

**Chapter** उन्नीस

**शुकदेव गोस्वामी का प्रकट होना**

सूत उवाच

महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं  
विचिन्तयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ।  
अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं  
निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥ १ ॥

### शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; मही-पतिः—राजा; तु—लेकिन; अथ—इस प्रकार ( घर वापस आते समय ); तत्—उस;  
कर्म—कार्य; गर्ह्यम्—घृणित; विचिन्तयन्—इस प्रकार सोचते हुए; आत्म-कृतम्—अपने द्वारा किया हुआ; सु-दुर्मनाः—  
अत्यन्त अनमना, उदास; अहो—अहो; मया—मेरे द्वारा; नीचम्—जघन्य; अनार्य—असंस्कृत, असभ्य; वत्—सदृश; कृतम्—  
किया गया; निरागसि—निर्दोष; ब्रह्मणि—ब्राह्मण के प्रति; गूढ—गम्भीर; तेजसि—शक्तिमान ।

श्री सूत गोस्वामी ने कहा : घर लौटाते हुए राजा ( महाराज परीक्षित ) ने अनुभव किया कि  
उन्होंने निर्दोष तथा शक्तिमान ब्राह्मण के प्रति अत्यन्त जघन्य तथा अशिष्ट व्यवहार किया है।  
फलस्वरूप वे अत्यन्त उद्विग्न थे।

तात्पर्य : शक्तिमान एवं निर्दोष ब्राह्मण के साथ अपने आकस्मिक अभद्र व्यवहार से पवित्र राजा  
अत्यन्त दुखी हुए। ऐसा पश्चात्ताप राजा जैसे उत्तम व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है और ऐसे पश्चात्ताप से  
भक्त आकस्मिक किए हुए पापों से उबर जाता है। भक्तगण स्वभावतः दोषरहित होते हैं। भक्त द्वारा  
होनेवाले आकस्मिक पापों के लिए खेद प्रकट किया जाता है और भगवत्कृपा से ऐसे अनिच्छित पाप  
पश्चात्ताप की अग्नि में जलकर भस्म हो जाते हैं।

ध्रुवं ततो मे कृतदेवहेलनाद्  
दुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् ।  
तदस्तु कामं ह्यघनिष्कृताय मे  
यथा न कुर्या पुनरेवमद्भा ॥ २ ॥

### शब्दार्थ

ध्रुवम्—निश्चित; ततः—अतएव; मे—मेरा; कृत-देव-हेलनात्—भगवान् की आज्ञाओं का उल्लंघन करने से; दुरत्ययम्—  
अत्यन्त कठिन; व्यसनम्—विपत्ति; न—नहीं; अति—अत्यधिक; दीर्घात्—दूर; तत्—वह; अस्तु—ऐसा हो; कामम्—बिना  
हिचक की इच्छा; हि—निश्चय ही; अघ—पाप; निष्कृताय—मुक्त होने के लिए; मे—मेरा; यथा—जिससे; न—कभी नहीं;  
कुर्याम्—करूंगा; पुनः—फिर; एवम्—जैसे मैंने किया है; अद्भा—प्रत्यक्ष रीति से।

[ राजा परीक्षित ने सोचा : ] भगवान् के आदेशों की अवहेलना करने से मुझे आशंका है कि  
निश्चित रूप से निकट भविष्य में मेरे ऊपर कोई संकट आनेवाला है। अब मैं बिना हिचक के

कामना करता हूँ कि वह संकट अभी आ जाय, क्योंकि इस तरह मैं पापपूर्ण कर्म से मुक्त हो जाऊँगा और फिर ऐसा अपराध नहीं करूँगा।

तात्पर्य : परमेश्वर का आदेश है कि ब्राह्मणों तथा गायों को सम्पूर्ण संरक्षण प्रदान किया जाय। भगवान् स्वयं ब्राह्मणों तथा गायों की भलाई करने के इच्छुक रहते हैं ( गो-ब्राह्मण-हिताय च )। महाराज परीक्षित यह सब जानते थे, अतएव उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि उनके द्वारा एक तेजस्वी ब्राह्मण का इस तरह अपमानित किया जाना निश्चित रूप से भगवान् के नियमों के विरुद्ध था और वे निकट के भविष्य में किसी घोर संकट की आशंका कर रहे थे। अतएव वे चाह रहे थे कि जो कुछ होना है, वह उन्हें तुरन्त हो ले, किन्तु उनके परिवारवालों को कुछ न हो। मनुष्य का दुर्व्यवहार उसके पूरे परिवार के सदस्यों को प्रभावित करता है। इसीलिए महाराज परीक्षित ने कामना की कि विपत्ति अकेले उन्हीं पर आये। वे स्वयं कष्ट भोगकर भावी पापों से बच जायेंगे और साथ ही, उन्होंने जो पाप किया है, उसका निराकरण हो जायेगा जिससे उनके वंशजों को कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा। एक जिम्मेदार भक्त इसी प्रकार से सोचता है। भक्त के परिवार के सदस्य भी भक्त द्वारा भगवान् की सेवा के प्रभावों का लाभ उठाते हैं। महाराज प्रह्लाद ने अपनी भक्तिमय सेवा से अपने असुर पिता को बचाया था। परिवार में भक्त सन्तान का होना भगवान् का सबसे बड़ा वरदान है।

अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं  
प्रकोपितब्रह्मकुलानलो मे ।  
दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्  
पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ॥ ३ ॥

### शब्दार्थ

अद्य—आज; एव—ही; राज्यम्—राज्य; बलम् ऋद्ध—बल तथा धन; कोशम्—खजाना; प्रकोपित—प्रज्वलित; ब्रह्म-कुल—ब्राह्मण कुल द्वारा; अनलः—अग्नि; मे दहतु—मुझे जला दे; अभद्रस्य—अशुभ; पुनः—फिर; न—नहीं; मे—मुझको; अभूत्—होए; पापीयसी—पापपूर्ण; धीः—बुद्धि; द्विज—ब्राह्मण; देव—भगवान्; गोभ्यः—तथा गायों के प्रति।

मैं ब्राह्मण सभ्यता, ईश्वर चेतना तथा गोरक्षा के प्रति उपेक्षा करने के फलस्वरूप अशिष्ट तथा पापी हूँ। अतएव मैं चाहता हूँ कि मेरा राज्य, मेरा पराक्रम तथा मेरा धन ब्राह्मण की

क्रोधाग्नि से तुरन्त भस्म हो जाय, जिससे भविष्य में ऐसे अशुभ विचारों से मेरा मार्गदर्शन न होने पाए।

**तात्पर्य :** प्रगतिशील मानवीय सभ्यता ब्राह्मण संस्कृति, ईश्वरीय चेतना तथा गोरक्षा पर आधारित है। उपर्युक्त सिद्धान्तों के सम्बन्ध में ही व्यापार, वाणिज्य, कृषि तथा उद्योगों के द्वारा राज्य के सारे आर्थिक विकास को पूरी तरह उपयोग में लाना चाहिए, अन्यथा सारे तथाकथित आर्थिक विकास अवनति के साधन बन जाते हैं। गो-रक्षा का अर्थ है ब्राह्मण संस्कृति को भोजन प्रदान करना, जिससे ईश्वर चेतना प्राप्त होती है और इस तरह मानवीय सभ्यता में पूर्णता आती है। कलियुग का लक्ष्य जीवन के उच्चआदर्शों को विनष्ट करना है और यद्यपि महाराज परीक्षित ने संसार के भीतर कलि के वर्चस्व का बलपूर्वक प्रतिरोध किया, किन्तु कलि का प्रभाव उपयुक्त समय में प्रकट हुआ, जिससे महाराज परीक्षित जैसे प्रबल राजा से भूख तथा प्यास की थोड़ी सी उत्तेजना के कारण ब्राह्मण संस्कृति की अवमानना हो गयी। महाराज परीक्षित ने इस आकस्मिक घटना के प्रति पश्चात्ताप किया और उन्होंने कामना की कि उनका सारा राज्य, उनका बल तथा उनका कोष, यदि वह ब्राह्मण संस्कृति के काम नहीं आता, तो जलकर भस्म हो जाय।

जहाँ कहीं सम्पत्ति तथा शक्ति का सदुपयोग ब्राह्मण संस्कृति, ईश्वर चेतना तथा गोरक्षा के उन्नयन के लिए नहीं होता, वह राज्य तथा वह घर निश्चित रूप से विनष्ट हो जाता है। यदि हम विश्व में शान्ति तथा सम्पन्नता चाहते हैं, तो हमें इस श्लोक से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। प्रत्येक राज्य तथा प्रत्येक घर को आत्म-शुद्धि के लिए ब्राह्मण संस्कृति को, आत्म-साक्षात्कार के लिए ईश्वर चेतना को तथा पूर्ण सभ्यता को चालू रखने के लिए पर्याप्त दूध तथा उत्तम भोजन प्राप्त करने के लिए गोरक्षा को प्रश्रय देने का प्रयास करना चाहिए।

स चिन्तयन्नित्थमथाशृणोद् यथा  
मुनेः सुतोक्तो निर्ऋतिस्तक्षकाख्यः ।  
स साधु मेने न चिरेण तक्षका-  
नलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ॥ ४ ॥

## शब्दार्थ

सः—उन्होंने ( राजा ने ); चिन्तयन्—सोचते हुए; इत्थम्—इस प्रकार; अथ—अब; अश्रुणोत्—सुना; यथा—जिस तरह; मुनेः—मुनि के; सुत-उक्तः—पुत्र द्वारा कहा गया; निर्रहतिः—मृत्यु; तक्षक-आख्यः—सर्प-पक्षी के विषय में; सः—उन्होंने ( राजा ने ); साधु—अच्छा तथा शुभ; मेने—स्वीकार किया; न—नहीं; चिरेण—दीर्घकाल तक; तक्षक—तक्षक सर्प; अनलम्—अग्नि; प्रसक्तस्य—लिप्त रहनेवालों के; विरक्ति—उदासी का; कारणम्—कारण।

जब राजा इस तरह पश्चात्ताप कर रहे थे, तो उन्हें अपनी आसन्न मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ, जो मुनि पुत्र द्वारा दिये गये शाप के अनुसार सर्प-पक्षी के काटने से होनी थी। राजा ने इसे शुभ समाचार के रूप में ग्रहण किया, क्योंकि इससे उन्हें सांसारिकता के प्रति विराग उत्पन्न होगा।

**तात्पर्य :** सच्चा सुख आध्यात्मिक तत्त्व या जन्म-मृत्यु के चक्र के बन्द होने पर ही प्राप्त होता है। जन्म-मृत्यु के चक्र को भगवद्धाम वापस जाकर ही तोड़ा जा सकता है। भौतिक जगत में सर्वोच्च लोक (ब्रह्मलोक) को प्राप्त करने पर भी जन्म-मृत्यु के चक्र से नहीं छूटा जा सकता; तो भी हम सिद्धि प्राप्त करने के पथ को ग्रहण नहीं करते। यह सिद्धि-पथ मनुष्य को सारी भौतिक आसक्तियों से मुक्त करनेवाला है और इस तरह वह आध्यात्मिक जगत में प्रवेश करने के योग्य बनता है। अतएव जो दीन-हीन हैं, वे सम्पन्न व्यक्तियों की अपेक्षा अच्छे उम्मीदवार हैं। महाराज परीक्षित भगवान् के महान् भक्त थे और भगवान् के धाम जाने के लिए प्रामाणिक उम्मीदवार थे, किन्तु ऐसा होते हुए भी, उनके साथ सबसे बड़ी बाधा चक्रवर्ती सम्राट के रूप में उनकी भौतिक सम्पत्ति थी, जिससे वे दिव्य आकाश में भगवान् के पार्षद के रूप में अपना असली पद प्राप्त नहीं कर पा रहे थे। भगवद्भक्त के रूप में वे यह समझ सके कि यद्यपि ब्राह्मण बालक का शाप मूर्खतापूर्ण था, फिर भी वह उनके लिए आशीर्वाद था, क्योंकि यह सांसारिकता से—राजनीतिक या सामाजिक दोनों से, विरक्ति का कारण था। शमीक मुनि ने भी घटना पर शोक प्रकट करने के बाद अपना कर्तव्य समझकर राजा को यह सूचना भेज दी थी ताकि वे भगवद्धाम जाने के लिए तैयार रहें। शमीक मुनि ने राजा को सन्देश भेजा कि यद्यपि उनका पुत्र शृंगी तेजस्वी ब्राह्मण बालक था, किन्तु मूर्ख होने के कारण उसने अपनी आध्यात्मिक शक्ति का दुरुपयोग राजा को व्यर्थ में शापित करने में किया। राजा द्वारा मुनि के गले में सर्प डालना मृत्यु का शाप देने के लिए पर्याप्त कारण न था। लेकिन चूँकि शाप वापस लेने का कोई उपाय नहीं था, अतएव राजा को सूचित कर दिया गया था कि एक सप्ताह के भीतर मृत्यु के लिए तैयार रहें। शमीक मुनि तथा राजा

दोनों ही स्वरूपसिद्ध आत्मा थे। शमीक मुनि योगी थे और महाराज परीक्षित भक्त थे, अतएव उन दोनों में आत्म-साक्षात्कार के विषय में कोई अन्तर नहीं था। दोनों में से कोई भी मरने से भयभीत न था। महाराज परीक्षित को क्षमा याचना के लिए मुनि के पास जाना चाहिए था, किन्तु राजा को उनकी आसन्न मृत्यु की सूचना मुनि ने इतने खेद सहित भेजी थी कि राजा अब अपनी उपस्थिति से मुनि को अधिक शर्मिन्दा नहीं करना चाहते थे। उन्होंने अपनी आसन्न मृत्यु के लिए तैयारी करने तथा भगवद्धाम जाने का मार्ग खोजने का निश्चय किया।

यह मनुष्य जीवन भगवद्धाम वापस जाने या जन्म-मृत्यु के चक्र से—भवसागर से छूटने के लिए अपने को तैयार करने का सुअवसर है। इस प्रकार वर्णाश्रम-धर्म प्रणाली में प्रत्येक पुरुष तथा स्त्री को इस कार्य के लिए शिक्षा दी जाती है। दूसरे शब्दों में, वर्णाश्रम-धर्म प्रणाली सनातन-धर्म भी कहलाती है। वर्णाश्रम-धर्म प्रणाली मनुष्य को भगवद्धाम वापस जाने के लिए तैयार करती है। इस तरह गृहस्थ को वानप्रस्थ बनकर जंगल में जाकर पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने तथा अपनी अपरिहार्य मृत्यु के पूर्व संन्यास ग्रहण करने का आदेश रहता है। महाराज परीक्षित भाग्यशाली थे कि उन्हें मृत्यु के पूर्व सात दिन की पूर्व सूचना प्राप्त हो सकी। लेकिन सामान्यजनों को ऐसी कोई निश्चित पूर्वसूचना नहीं मिल पाती, यद्यपि मृत्यु सबों के लिए अवश्यम्भावी है। मूर्ख लोग मृत्यु के इस निश्चित तथ्य को भूल जाते हैं और भगवद्धाम जाने की तैयारी करने के अपने कर्तव्य की उपेक्षा करते हैं। वे खाने, पीने तथा आनन्द मनाने की पाशविक वृत्तियों में ही अपना जीवन व्यर्थ कर देते हैं। ऐसा अनुत्तरदायित्व-पूर्ण जीवन कलियुग के लोगों द्वारा अपनाया जाता है, क्योंकि उनमें ब्राह्मण संस्कृति, ईश्वर चेतना तथा गोरक्षा के तिरस्कार की पापपूर्ण इच्छा घर किये रहती है और इसके लिए राजसत्ता उत्तरदायी है। राज्य को चाहिए कि इन तीनों बातों की उन्नति के लिए धन खर्च करे और लोगों को मृत्यु की तैयारी करने की शिक्षा दे। जो राज्य ऐसा करता है, वह असली कल्याणप्रद राज्य है। अच्छा हो कि भारत राज्य आदर्श प्रशासकाध्यक्ष महाराज परीक्षित के आदर्शों का पालन करे; वह अन्य भौतिकतावादी राज्यों का अनुकरण न करे जिनके पास भगवद्धाम की कोई जानकारी नहीं है, जो मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है। भारतीय सभ्यता के आदर्शों में गिरावट आने से, न केवल भारत में, अपितु विदेशों में भी नागरिक जीवन में गिरावट आई है।

अथो विहायेमममुं च लोकं  
विमर्शितौ हेयतया पुरस्तात् ।  
कृष्णाङ्घ्रिसेवामधिमन्यमान  
उपाविशत् प्रायममर्त्यनद्याम् ॥ ५ ॥

### शब्दार्थ

अथो—इस तरह; विहाय—छोड़कर; इमम्—यह; अमुम्—तथा अगला; च—भी; लोकम्—लोक; विमर्शितौ—निर्णय होने पर भी वे सब; हेयतया—निम्नता के कारण; पुरस्तात्—इसके पूर्व; कृष्ण-अङ्घ्रि—भगवान् कृष्ण के चरणकमल की; सेवाम्—दिव्य प्रेमाभक्ति; अधिमन्यमानः—सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि के विषय में सोचनेवाला; उपाविशत्—दृढ़ता से बैठ गया; प्रायम्—उपवास के लिए; अमर्त्य-नद्याम्—दिव्य नदी ( गंगा या यमुना ) के तट पर ।

महाराज परीक्षित आत्म-साक्षात्कार की अन्य समस्त विधियों को छोड़कर अपने मन को कृष्णभावनामृत में एकाग्र करने के लिए गंगा नदी के तट पर दृढ़तापूर्वक बैठ गये, क्योंकि कृष्ण की दिव्य प्रेममयी सेवा सर्वोच्च उपलब्धि है और अन्य समस्त विधियों को मात करनेवाली है।

**तात्पर्य :** महाराज परीक्षित जैसे भक्त के लिए कोई भी भौतिक लोक, यहाँ तक कि सर्वोच्च ब्रह्मलोक भी, उतना वांछनीय नहीं जितना कि आदि पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण का धाम गोलोक वृन्दावन है। यह पृथ्वीलोक ब्रह्माण्ड के असंख्य ग्रहों में से एक है और महत् तत्त्व की परिधि में ऐसे असंख्य ब्रह्माण्ड होते हैं। भक्तों को भगवान् द्वारा तथा भगवान् के प्रतिनिधि गुरुओं या आचार्यों द्वारा बतलाया जाता है कि असंख्य ब्रह्मांडों में से कोई भी ग्रह भक्तों के रहने योग्य नहीं है। भक्त सदैव अपने घर भगवद्धाम वापस जाने के इच्छुक रहते हैं जहाँ वे सेवक, मित्र, माता-पिता या भगवान् के प्रेमी के रूप में, उनके पार्षदों में से एक बनकर किसी एक वैकुण्ठलोक में या भगवान् श्रीकृष्ण के धाम गोलोक वृन्दावन में रह सकें। ये सारे लोक पर-व्योम में सनातन रूप से स्थित हैं, जो महत् तत्त्व के अन्दर कारणार्णव की दूसरी ओर है। महाराज परीक्षित वैष्णव भक्तों के उच्च कुल में जन्म लेने तथा अपनी संचित धर्मनिष्ठा के कारण पहले से ही इन सारी जानकारी से अवगत थे, अतएव वे कोई भौतिक ग्रह में जाने के लिए जरा भी इच्छुक न थे। आधुनिक विज्ञानी भौतिक व्यवस्था द्वारा चन्द्रमा तक पहुँचने के अत्यन्त उत्सुक हैं, लेकिन वे इस ब्रह्माण्ड के सर्वोच्च लोक की कल्पना भी नहीं कर सकते। लेकिन महाराज परीक्षित जैसा भक्त, चन्द्रमा या इस प्रकार के किसी भी भौतिक लोक की, रंच भी परवाह नहीं

करता। अतएव जब उन्हें एक निश्चित तिथि पर मृत्यु का आश्वासन दे दिया गया तो वे दिव्य यमुना नदी के तट पर, जो हस्तिनापुर की राजधानी (अब दिल्ली प्रान्त में) के पास से होकर बहती है, पूर्ण उपवास द्वारा भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति में दृढ़-प्रतिज्ञ हो गये। गंगा तथा यमुना दोनों ही *अमर्त्या* (दिव्य) नदियाँ हैं और यमुना अब भी निम्नलिखित कारणों से अधिक पवित्र है।

या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्र-  
 कृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री ।  
 पुनाति लोकानुभयत्र सेशान्  
 कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥ ६ ॥

### शब्दार्थ

या—जो नदी; वै—सदा; लसत्—प्रवाहित; श्री—तुलसी—तुलसी-दलों से; विमिश्र—मिश्रित; कृष्णा—अङ्घ्रि—भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमल की; रेणु—धूल; अभ्यधिक—शुभ; अम्बु—जल; नेत्री—ले जानेवाली; पुनाति—पवित्र करता है; लोकान्—लोकों को; उभयत्र—ऊपर-नीचे अथवा भीतर-बाहर दोनों; स-ईशान्—शिवजी समेत; कः—अन्य कौन; ताम्—उस नदी को; न—नहीं; सेवेत—पूजा करते हैं; मरिष्यमाणः—आसन्न मृत्युवाला।

यह नदी ( गंगा, जिसके किनारे राजा उपवास करने बैठे थे ) अत्यन्त शुभ जल धारण करती है, जिसमें भगवान् के चरण-कमलों की धूल तथा तुलसीदल मिश्रित रहते हैं। अतएव यह जल तीनों लोकों को भीतर-बाहर से पवित्र बनाता है और शिवजी तथा अन्य देवताओं को भी पवित्र करता है। अतएव जिसकी मृत्यु निश्चित हो, उसे इस नदी की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

तात्पर्य : महाराज परीक्षित सात दिनों के भीतर अपनी मृत्यु की सूचना पाते ही तत्काल गृहस्थ जीवन से निवृत्त हो लिए और यमुना नदी के पवित्र तट पर चले गये। सामान्यतया यह कहा जाता है कि राजा ने गंगा नदी के किनारे शरण ली थी, लेकिन श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार राजा ने यमुना-तट पर शरण ली थी। भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से श्रील जीव गोस्वामी का कथन अधिक सटीक प्रतीत होता है। महाराज परीक्षित अपनी राजधानी हस्तिनापुर में वास करते थे, जो वर्तमान दिल्ली के निकट स्थित है और यमुना नदी इस नगर के पास से होकर बहती है। स्वाभाविक है कि राजा यमुना नदी के तट पर शरण ग्रहण करेंगे, क्योंकि यह नदी उनके महल के द्वार से होकर बह रही थी। और जहाँ तक पवित्रता की बात है, यमुना नदी गंगा नदी की अपेक्षा भगवान् कृष्ण से अधिक प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित है। भगवान् ने इस जगत में अपनी दिव्य लीलाओं के प्रारम्भ से ही यमुना नदी को पवित्र



बनाया। जब उनके पिता वसुदेव बालक कृष्ण को लेकर यमुना पार करके मथुरा से गोकुल ले जा रहे थे, तो भगवान् इस नदी में गिर पड़े थे और भगवान् के चरणकमलों की धूलि का स्पर्श पाकर वह तुरन्त ही पवित्र हो गई थी। यहाँ पर विशेष उल्लेख है कि महाराज परीक्षित ने उस विशेष नदी की शरण ग्रहण की, जो सुन्दर ढंग से बह रही थी और तुलसीदल से मिश्रित भगवान् के चरणकमलों की धूलि लिये जा रही थी। भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर सदैव तुलसीदल चढ़े रहते हैं, अतएव ज्योंही उनके चरणकमल गंगा तथा यमुना-नदी के जल को स्पर्श करते हैं, त्योंही नदियाँ पवित्र हो जाती हैं। लेकिन भगवान् ने गंगा की अपेक्षा यमुना का ही अधिक स्पर्श किया। *वराह पुराण* के अनुसार, जैसाकि श्रील जीव गोस्वामी ने उद्धृत किया है, गंगा तथा यमुना नदियों के जल में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु जब गंगा का जल एक सौ गुना पवित्र हो जाता है, तो वह यमुना कहलाती है। इसी तरह शास्त्रों में कहा गया है कि विष्णु के एक हजार नाम राम के एक नाम के बराबर हैं और राम के तीन नाम कृष्ण के एक नाम के तुल्य हैं।

इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः  
 प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् ।  
 दधौ मुकुन्दाङ्घ्रिमनन्यभावो  
 मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसङ्गः ॥ ७ ॥

### शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; व्यवच्छिद्य—निश्चय करके; सः—राजा; पाण्डवेयः—पाण्डवों की योग्य सन्तान; प्राय-उपवेशम्—आमरण उपवास के लिए; प्रति—की ओर; विष्णु-पद्याम्—गंगा नदी के तट पर ( भगवान् विष्णु के चरणों से निकल कर ); दधौ—त्याग दिया; मुकुन्द-अङ्घ्रिम्—भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर; अनन्य—अविचलित; भावः—आत्मा, भाव; मुनि-व्रतः—मुनि का व्रत लेकर; मुक्त—मुक्त; समस्त—सभी प्रकार की; सङ्गः—संगति से।

इस प्रकार, पाण्डवों की सुयोग्य सन्तान, राजा ने दृढ़ संकल्प किया और आमरण उपवास करने तथा भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में अपने आप को समर्पित करने के लिए, वे गंगा नदी के तट पर बैठ गये, क्योंकि एकमात्र कृष्ण ही मुक्ति दिलाने में समर्थ हैं। इस प्रकार उन्होंने अपने आपको समस्त संगतियों तथा आसक्तियों से मुक्त करके मुनि का व्रत स्वीकार किया।

तात्पर्य : गंगा का जल देवों समेत तीनों लोकों को पवित्र करता है, क्योंकि यह भगवान् विष्णु के चरणकमलों से निकलता है। भगवान् कृष्ण विष्णु तत्त्व के स्रोत हैं, अतएव उनके चरणकमलों की

शरण मनुष्य को ब्राह्मण के प्रति राजा द्वारा किये गये अपराध सहित समस्त पापों से उबार सकती है। अतएव महाराज परीक्षित ने मुकुन्द अथवा मुक्तिदाता भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करने का निश्चय किया। गंगा या यमुना नदी के तट मनुष्य को भगवान् का निरन्तर स्मरण करने का एक अवसर प्रदान करते हैं। महाराज परीक्षित ने अपने आपको सभी प्रकार की भौतिक संगति से विलग कर लिया और भगवान् कृष्ण के चरणकमलों का ध्यान किया और यही मुक्ति का मार्ग है। समस्त प्रकार की भौतिक संगति से मुक्त होने का अर्थ है, आगे और कोई पाप न करना। भगवान् के चरणकमलों का ध्यान करने का अर्थ है, समस्त पूर्व-पापों के प्रभावों से मुक्त होना। भौतिक जगत में ऐसी परिस्थितियाँ बन जाती हैं कि मनुष्यों से, जाने या अनजाने, पाप हो जाता है और इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं स्वयं महाराज परीक्षित, जो माने हुए एक निष्पाप-पवित्र राजा थे। किन्तु वे कोई त्रुटि करना न चाहते हुए भी, अपराध के शिकार हो गये। उन्हें शाप भी दिया गया, किन्तु चूँकि वे भगवान् के बहुत बड़े भक्त थे, अतएव जीवन की ऐसी प्रतिकूलताएँ भी अनुकूल हो गईं। सिद्धान्त यह है कि मनुष्य को जानबूझ कर अपने जीवन में कोई पाप नहीं करना चाहिए और अविचल भाव से भगवान् के चरणकमलों को स्मरण रखना चाहिए। ऐसी ही दशाओं में भक्त को मुक्ति-मार्ग में नियमित प्रगति करने में भगवान् सहायक होंगे और इस तरह भक्त को भगवान् के चरणकमल प्राप्त हो सकेंगे। यदि भक्त से कोई आकस्मिक पाप हो भी जाता है, तो भगवान् इस शरणागत को सभी पापों से बचा लेते हैं, जिसकी पुष्टि सभी शास्त्रों में हुई है—

*स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य*

*त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ।*

*विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद्*

*धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥*

( भागवत ११.५.४२ )

तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना

महानुभावा मुनयः सशिष्याः ।

प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः

स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ॥ ८ ॥

### शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; उपजग्मुः—पहुँचा; भुवनम्—ब्रह्माण्ड को; पुनानाः—पवित्र करनेवाले; महा-अनुभावाः—बड़े-बड़े मेधावी; मुनयः—विचारक; स-शिष्याः—अपने शिष्यों समेत; प्रायेण—प्रायः; तीर्थ—तीर्थस्थान; अभिगम—यात्रा; अपदेशैः—के बहाने से; स्वयम्—स्वयं; हि—निश्चय ही; तीर्थानि—तीर्थयात्रा से सारे स्थान; पुनन्ति—पवित्र बनाते हैं; सन्तः—मुनिगण।

उस अवसर पर बड़े-बड़े मेधावी विचारक, अपने शिष्यों के संग एवं अपनी उपस्थिति के द्वारा तीर्थ-स्थानों को निश्चय ही पवित्र करनेवाले मुनिगण तीर्थयात्रा के बहाने वहाँ आ पहुँचे।

तात्पर्य : जब महाराज परीक्षित गंगा के तट पर बैठ गये, तो यह समाचार ब्रह्माण्ड में चारों दिशाओं में फैल गया और अत्यन्त मेधावी मुनिगण, जो इस अवसर के महत्त्व को समझ सकते थे, तीर्थयात्रा का बहाना करके वहाँ आ पहुँचे। वास्तव में वे महाराज परीक्षित से भेंट करने आये थे, स्नान-यात्रा करने नहीं आये थे, क्योंकि वे सभी तीर्थों को पवित्र करने में सक्षम थे। सामान्य लोग अपने समस्त पापों को धोने के लिए तीर्थस्थानों में जाते हैं। इस तरह तीर्थस्थल अन्यों के पापों से बोझिल हो उठते हैं। किन्तु जब ऐसे मुनि बोझिल तीर्थ-स्थानों की यात्रा करते हैं, तो वे अपनी उपस्थिति से उन स्थानों को पवित्र बनाते हैं। अतएव जो मुनि महाराज परीक्षित से भेंट करने आये, उन्हें सामान्य व्यक्तियों की भाँति अपने को शुद्ध करने की परवाह नहीं थी, अपितु वे उस स्थान में स्नान करने के बहाने महाराज परीक्षित से भेंट करने आये थे, क्योंकि उन्होंने यह पूर्वानुमान लगा लिया था कि शुकदेव गोस्वामी द्वारा श्रीमद्भागवत का प्रवचन होगा। वे सभी इस महान् अवसर का लाभ उठाना चाहते थे।

अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वा-

नरिष्टनेमिर्भृगुरङ्गिराश्च ।

पराशरो गाधिसुतोऽथ राम

उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ ॥ ९ ॥

मेधातिथिर्देवल आर्षिषेणो

भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ।

मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनि-

द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥ १० ॥

अत्रि से नारद—ये सभी विभिन्न साधु पुरुषों के नाम हैं, जो ब्रह्माण्ड के विभिन्न भागों से यहाँ आये थे।

ब्रह्माण्ड के विभिन्न भागों से बड़े-बड़े मुनि वहाँ आये—यथा अत्रि, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, वसिष्ठ, पराशर, विश्वामित्र, अङ्गिरा, परशुराम, उत्थय, इन्द्रप्रमद, इध्मवाहु, मेधातिथि, देवल, आर्षिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, कुम्भयोनि, द्वैपायन तथा महापुरुष नारद।

तात्पर्य : च्यवन—ये महामुनि थे तथा भृगुमुनि के पुत्रों में से एक थे। उनका जन्म समय से पूर्व हुआ था, जब इनकी गर्भिणी माता का अपहरण हुआ था। च्यवन अपने पिता के छः पुत्रों में से एक थे।

भृगु—जब ब्रह्माजी वरुण की ओर से महान् यज्ञ कर रहे थे, तब महर्षि भृगु यज्ञ की अग्नि से उत्पन्न हुए थे। वे महर्षि थे और उनकी प्रिय पत्नी पुलोमा थीं। वे दुर्वासा, नारद तथा अन्यो की भाँति अन्तरिक्ष में विचरण कर सकते थे और वे ब्रह्माण्ड के सारे ग्रहों में विचरने जाया करते थे। कुरुक्षेत्र युद्ध के पूर्व उन्होंने युद्ध रोकने का प्रयास किया। कभी उन्होंने भारद्वाज मुनि को खगोलशास्त्र की शिक्षा दी थी और वे महान् ज्योतिषशास्त्र बृहद् भृगुसंहिता के रचियता हैं। उन्होंने बताया कि किस प्रकार आकाश से वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी उत्पन्न होते हैं। उन्होंने बताया कि उदर में वायु किस प्रकार कार्य करती है और आँतों को व्यवस्थित करती है। महान् दार्शनिक के रूप में उन्होंने जीव की शाश्वतता को तर्क से स्थापित किया ( महाभारत )। वे महान् नृतत्त्वशास्त्री थे। उन्होंने बहुत काल पूर्व विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। वे वर्णाश्रम-व्यवस्था के वैज्ञानिक प्रतिपादकों में थे। उन्होंने क्षत्रिय राजा वीतहव्य को ब्राह्मण बनाया।

वसिष्ठ—देखिये श्रीमद्भागवत ( १.९.६ )।

पराशर—ये वसिष्ठ मुनि के पौत्र तथा व्यासदेव के पिता हैं। ये महर्षि शक्ति के पुत्र थे और इनकी माता का नाम अदृश्यती था। जब वे अपनी माता के गर्भ में थे, तब उनकी माता केवल बारह वर्ष की थीं और माता के गर्भ में ही उन्होंने वेद सीखे थे। उनके पिता का वध कल्माषपाद नामक असुर ने किया था, अतएव इसका बदला लेने के लिए उन्होंने सम्पूर्ण संसार को विनष्ट करना चाहा, किन्तु उनके पितामह वसिष्ठ ने उन्हें रोका। तब उन्होंने राक्षस-वध-यज्ञ सम्पन्न किया, लेकिन महर्षि पुलत्स्य ने उन्हें रोका। सत्यवती से आकर्षित होने पर उन्हें व्यासदेव की प्राप्ति हुई। सत्यवती बाद में महाराज शान्तनु

की पत्नी बनीं। पराशर के आशीर्वाद से ही सत्यवती मीलों तक सुगन्ध फैलाती थीं। वे भीष्म की मृत्यु के समय भी उपस्थित थे। वे महाराज जनक के गुरु थे और शिवजी के महान् भक्त थे। वे अनेक वैदिक शास्त्रों तथा समाजशास्त्रीय निर्देशों के कृतिकार हैं।

*गाधिसुत या विश्वामित्र*—ये तपस्या तथा योगशक्ति के महान ऋषि थे। ये गाधिसुत के नाम से विख्यात हैं, क्योंकि इनके पिता गाधि कान्यकुब्ज प्रान्त (उत्तर प्रदेश का अंग) के शक्तिशाली राजा थे। यद्यपि ये जन्म से क्षत्रिय थे, लेकिन वे अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों के बल पर उसी शरीर से ब्राह्मण बने। इन्होंने वसिष्ठ मुनि से झगड़ा मोल ले लिया, जब वे क्षत्रिय राजा थे। मतंग मुनि के सहयोग से इन्होंने एक महान् यज्ञ किया। इस प्रकार ये वसिष्ठ के पुत्रों का नाश कर सके। ये महान् योगी बने, किन्तु इन्द्रियों को वश में न रख सकने के कारण इन्हें शकुन्तला का पिता बनना पड़ा जो विश्व इतिहास की परम सुन्दरी है। एक बार जब वे क्षत्रिय राजा थे, तो वे वसिष्ठ मुनि के आश्रम में गये, जहाँ इनका भव्य स्वागत हुआ। विश्वामित्र वसिष्ठ से नन्दिनी नामक गाय चाहते थे, किन्तु मुनि ने उसे देने से इनकार कर दिया। तब विश्वामित्र ने गाय चुरा ली और मुनि तथा राजा के बीच युद्ध छिड़ गया। विश्वामित्र वसिष्ठ की आध्यात्मिक शक्ति से परास्त हुए, अतएव राजा ने ब्राह्मण बनने का निश्चय किया। ब्राह्मण बनने के पूर्व इन्होंने कौशिक नदी के तट पर कठिन तपस्या की। ये उन व्यक्तियों में से थे, जिन्होंने कुरुक्षेत्र युद्ध को रोकना चाहा था।

*अङ्गिरा*—ये ब्रह्मा के छह मानसपुत्रों में से एक तथा स्वर्ग के देवताओं के अत्यन्त विद्वान पुरोहित बृहस्पति के पिता थे। ये ब्रह्मा के वीर्य से उत्पन्न हुए जिसे उन्होंने अग्नि के एक सुलगते अंगारे को दिया था। उत्थय तथा संवर्त उनके पुत्र हैं। कहा जाता है कि वे आज भी गंगा के तट पर अलोकानन्दा नामक स्थान पर भगवान् के नाम का कीर्तन करते हैं और तपस्या कर रहे हैं।

*परशुराम*—देखें *श्रीमद्भागवत* १.९.६।

*उत्थय*—ये महर्षि अंगिरा के तीन पुत्रों में से एक तथा महाराज मन्धाता के गुरु थे। उन्होंने सोम (चन्द्रमा) की पुत्री भद्रा से विवाह किया था। जब वरुण ने इनकी पत्नी भद्रा का अपहरण कर लिया, तो जलदेवता वरुण के अपराध का बदला लेने के लिए ये संसार भर का पानी पी गये।

**मेधातिथि**—प्राचीनकाल के एक वृद्ध मुनि, राजा इन्द्रदेव के सभासद। उनके पुत्र कण्व मुनि थे, जिन्होंने वन में शकुन्तला का पालन किया था। वानप्रस्थ आश्रम का दृढ़ता से पालन करते हुए इन्होंने स्वर्गलोक की प्राप्ति की।

**देवल**—ये नारद मुनि तथा व्यासदेव की भाँति महान् विशेषज्ञ थे। जब अर्जुन ने श्रीकृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार किया, तो *भगवद्गीता* में उल्लिखित महापुरुषों की सूची में इनका नाम है। ये कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद महाराज युधिष्ठिर से मिले थे। ये पाण्डव-परिवार के पुरोहित धौम्य के बड़े भाई थे। क्षत्रियों की भाँति इन्होंने भी अपनी पुत्री को स्वयंवर सभा में अपना पति स्वयं चुनने की अनुमति दी और इस उत्सव में ऋषियों के सभी कुमार पुत्रों को आमंत्रित किया गया था। कुछ लोगों के अनुसार ये असित देवल नहीं हैं।

**भारद्वाज**—देखें *श्रीमद्भागवत* १.९.६।

**गौतम**—ये ब्रह्माण्ड के सात महर्षियों में से एक थे। इनके एक पुत्र का नाम शरद्धान गौतम था। आज के गौतम गोत्र के लोग या तो इनके वंशज हैं अथवा इनकी शिष्य-परम्परा के हैं। जो ब्राह्मण अपना गौतम गोत्र बताते हैं, वे इनके वंशज हैं और जितने गौतम गोत्र वाले क्षत्रिय तथा वैश्य हैं, वे उनकी शिष्य-परम्परा के हैं। वे विख्यात अहल्या के पति थे। अहल्या इन्द्रदेव के द्वारा छेड़े जाने पर पत्थर बन गई थी, किन्तु भगवान् रामचन्द्र द्वारा इसका उद्धार हुआ। गौतम कुरुक्षेत्र युद्ध के वीरों में से एक कृपाचार्य के पितामह थे।

**मैत्रेय**—ये एक प्राचीन ऋषि हैं। ये विदुर के गुरु थे और एक महान् धर्माचार्य थे। इन्होंने धृतराष्ट्र को सलाह दी थी कि वे पाण्डवों से अच्छे मधुर सम्बन्ध बनाये रखें। किन्तु दुर्योधन राजी नहीं हुआ, तो इन्होंने उसे शाप दे दिया। ये व्यासदेव से मिले और उनके साथ इन्होंने धार्मिक चर्चाएँ कीं।

अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या

राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ।

नानार्षेयप्रवरान् समेता-

नभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे ॥ ११ ॥

## शब्दार्थ

अन्ये—अन्य अनेक; च—भी; देवर्षि—देवताओं में ऋषि; ब्रह्मर्षि—ऋषितुल्य ब्राह्मण; वर्याः—सर्वश्रेष्ठ; राजर्षि-वर्याः—राजर्षियों में श्रेष्ठ; अरुण-आदयः—राजर्षियों में विशिष्ट पद; च—तथा; नाना—अन्य अनेक; आर्षेय-प्रवरान्—ऋषिवंशों में श्रेष्ठ; समेतान्—एकसाथ, समूहित; अभ्यर्च्य—पूजा करके; राजा—सम्राट ने; शिरसा—भूमि पर सिर झुकाकर; ववन्दे—प्रणाम किया।

इनके अतिरिक्त वहाँ अन्य अनेक देवर्षि, राजा तथा विभिन्न मुनियों के वंशज विशिष्ट राजा आये थे, जिन्हें अरुणादय कहा जाता है। जब वे सब सम्राट ( परीक्षित ) से मिलने के लिए एकत्र हुए, तो राजा ने सबको शीश नमाकर प्रणाम करते हुए समुचित ढंग से उनका स्वागत किया।

तात्पर्य : गुरुजनों को आदर करने के लिए सिर को भूमि तक झुकाने की प्रथा अत्यन्त उत्तम शिष्टाचार है, जिससे अतिथि अपने को अत्यधिक सम्मानित समझते हैं। यहाँ तक कि उच्च-कोटि के अपराधी के ऐसा करने पर उसे क्षमा कर दिया जाता है और महाराज परीक्षित तो समस्त ऋषियों तथा राजाओं द्वारा अत्यधिक सम्मानित थे। उन्होंने इन समस्त महापुरुषों का विनीत भाव से स्वागत किया, जिससे वे अपने अपराधों के लिए क्षमा किये जा सकें। सामान्यतया जीवन की अन्तिम अवस्था में यह विनीत विधि प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति द्वारा अपनाई जाती है, जिससे प्रयाण के पूर्व उसे क्षमा किया जा सके। इस प्रकार से महाराज परीक्षित ने भगवद्धाम वापस जाने के लिए सबों की शुभ कामनाएँ प्राप्त कीं।

सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः

कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत् ।

विज्ञापयामास विविक्तचेता

उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ॥ १२ ॥

## शब्दार्थ

सुख—सुखपूर्वक; उपविष्टेषु—सभी बैठे हुए; अथ—तत्पश्चात्; तेषु—उनको ( आगन्तुकों को ); भूयः—फिर; कृत-प्रणामः—प्रणाम करके; स्व—अपना; चिकीर्षितम्—उपवास का निर्णय; यत्—जो; विज्ञापयाम् आस—प्रस्तुत किया; विविक्त-चेताः—सांसारिक मामलों से जिसका मन विरक्त है; उपस्थितः—उपस्थित होकर; अग्रे—उनके सामने; अभिगृहीत-पाणिः—विनीतभाव से हाथ जोड़े।

जब सारे ऋषियों तथा अन्य लोगों ने सुखपूर्वक आसन ग्रहण कर लिया, तो उनके समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हुए राजा ने आमरण व्रत करने का अपना संकल्प बतलाया।

**तात्पर्य :** यद्यपि राजा ने पहले ही गंगा तट पर उपवास करने का निश्चय कर लिया था, किन्तु वहाँ पर उपस्थित महापुरुषों का अभिमत जानने के लिए नियमपूर्वक अपना निर्णय व्यक्त किया। कोई भी निर्णय कितना भी महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, किसी न किसी अधिकारी द्वारा पुष्ट होना चाहिए। इससे बात पक्की हो जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि उन दिनों जो राजा पृथ्वी पर शासन करते थे, वे गैर-जिम्मेदार तानाशाह नहीं होते थे। वे वैदिक आदेशों के अनुसार सन्तों तथा मुनियों के प्रामाणिक निर्णयों का पालन करते थे। एक पूर्ण राजा के रूप में महाराज परीक्षित ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक आचार्यों की सलाह लेकर नियमों का पालन किया।

राजोवाच

अहो वयं धन्यतमा नृपाणां

महत्तमानुग्रहणीयशीलाः ।

राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद्

दूराद् विसृष्टं बत गर्ह्यकर्म ॥ १३ ॥

**शब्दार्थ**

राजा उवाच—सौभाग्यशाली राजा ने कहा; अहो—ओह; वयम्—हम सब; धन्य-तमाः—अत्यन्त धन्य या कृतज्ञ; नृपाणाम्—समस्त राजाओं का; महत्-तम—महापुरुषों का; अनुग्रहणीय-शीलाः—कृपा प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षित; राज्ञाम् कुलम्—राजाओं के समूह; ब्राह्मण-पाद—ब्राह्मणों के चरण; शौचात्—प्रक्षालन से बचा; दूरात्—दूर से; विसृष्टम्—सदा बचा हुआ; बत—के कारण; गर्ह्य—घृणित; कर्म—कार्य।

भाग्यशाली राजा ने कहा : निस्संदेह, मैं समस्त राजाओं में अत्यन्त धन्य हूँ, जो आप जैसे महापुरुषों का अनुग्रह प्राप्त करने के अभ्यस्त हैं। सामान्यतया, आप ( ऋषि ) लोग राजाओं को किसी दूर स्थान में फेंका जाने योग्य कूड़ा समझते हैं।

**तात्पर्य :** धार्मिक नियमों के अनुसार मल-मूत्र, धोवन इत्यादि को काफी दूर ले जाकर डालना चाहिए। भले ही घर से लगे स्नानागार, मूत्रालय इत्यादि आधुनिक सभ्यता की सुविधाएँ हों, लेकिन उन्हें रिहायशी मकानों से दूर बनाये जाने का आदेश है। यही उदाहरण यहाँ पर उन राजाओं पर लागू किया गया है, जो भगवद्धाम के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है कि जो लोग भगवद्धाम जाना चाहते हैं, उनके लिए करोड़पतियों के या राजाओं के घनिष्ठ सम्पर्क में रहना आत्म-हत्या से भी निकृष्ट है। दूसरे शब्दों में, अध्यात्मवादी लोग सामान्यतया ऐसे लोगों की संगति



नहीं करते, जो भगवान् की सृष्टि की बाह्य सुन्दरता द्वारा अत्यधिक आकृष्ट रहते हैं। आध्यात्मिक अनुभूति में उच्च ज्ञान होने से अध्यात्मवादी जानता है कि यह सुन्दर भौतिक जगत वास्तविकता का अर्थात् भगवद्धाम का छायारूप प्रतिबिम्ब मात्र है। अतएव वे राजसी ऐश्वर्य या इसी तरह की अन्य वस्तु से अधिक मोहित नहीं होते। किन्तु महाराज परीक्षित की बात ही कुछ और थी। ऊपरी तौर पर देखने में राजा को एक अनुभवहीन ब्राह्मण बालक द्वारा मृत्यु का शाप मिला था, किन्तु वास्तव में उन्हें भगवान् ने अपने पास बुलाया था। महाराज परीक्षित के आमरण व्रत का समाचार पाकर जितने अध्यात्मवादी, महर्षि तथा योगी वहाँ एकत्र हुए थे, वे उनका दर्शन पाने के लिए उत्सुक थे, क्योंकि वे भगवद्धाम वापस जा रहे थे। महाराज परीक्षित भी इस बात को समझते थे कि वहाँ पर जितने ऋषि एकत्र हुए हैं, वे उनके पूर्वज पाण्डवों की भगवद्भक्ति के कारण उन पर अत्यन्त कृपालु थे। अतएव परीक्षित महाराज अपने जीवन की अन्तिम अवस्था में समस्त मुनियों को वहाँ उपस्थित पाकर अत्यन्त कृतज्ञता का अनुभव कर रहे थे और उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि यह सब उनके पूर्वजों तथा पितामहों के प्रताप के कारण था। अतएव उन्हें गर्व हुआ कि वे ऐसे महान् भक्तों के वंशज हैं। भगवान् के भक्तों का ऐसा गर्व भौतिक समृद्धि से उत्पन्न दर्प के तुल्य नहीं होता। इनमें पहला तो वास्तविक है और दूसरा झूठा तथा व्यर्थ है।

तस्यैव मेऽघस्य परावरेणो  
 व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्षणम् ।  
 निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो  
 यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ॥ १४ ॥

### शब्दार्थ

तस्य—उसका; एव—निश्चय ही; मे—मेरा; अघस्य—पापी का; परा—दिव्य; अवर—संसारी; ईशः—नियन्ता, भगवान्;  
 व्यासक्त—अत्यधिक आसक्त; चित्तस्य—मन का; गृहेषु—घरलू मामलों में; अभीक्षणम्—सदैव; निर्वेद-मूलः—वैराग्य का  
 कारण; द्विज-शाप—ब्राह्मण द्वारा दिया गया शाप; रूपः—के रूप में; यत्र—जहाँ; प्रसक्तः—प्रभावित; भयम्—भय; आशु—  
 शीघ्र; धत्ते—घटित होते हैं।

आध्यात्मिक तथा प्राकृत जगतों के नियन्ता भगवान् ने ब्राह्मण-शाप के रूप में मुझे पर अत्यन्त कृपा की है। गृहस्थ जीवन में अत्यधिक आसक्त रहने के कारण, मुझे बचाने के लिए भगवान् मेरे समक्ष इस तरह प्रकट हुए हैं कि मैं भयवश अपने आपको संसार से विरक्त कर लूँ।

**तात्पर्य :** महाराज परीक्षित यद्यपि महान् भक्त पाण्डवों के परिवार में उत्पन्न हुए थे और यद्यपि उन्हें भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए दिव्य आसक्ति की शिक्षा प्राप्त थी, तो भी उन्हें संसारी गृहस्थ जीवन का आकर्षण इतना प्रबल लग रहा था कि उन्हें भगवान् की योजना द्वारा विलग किया जाना पड़ा। भगवान् विशिष्ट भक्त के लिए ही ऐसी प्रत्यक्ष कार्यवाही करते हैं। महाराज परीक्षित, ब्रह्माण्ड भर से आये श्रेष्ठ अध्यात्मवादियों की उपस्थिति से इसे समझ सके। भगवान् अपने भक्तों के साथ निवास करते हैं, अतएव बड़े-बड़े सन्तों की उपस्थिति भगवान् की उपस्थिति की सूचक थी। अतएव राजा ने महर्षियों की उपस्थिति को परमेश्वर के अनुग्रह का संकेत मानकर उनका स्वागत किया।

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा  
गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे ।  
द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा  
दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥ १५ ॥

### शब्दार्थ

तम्—इस कारण; मा—मुझको; उपयातम्—शरणागत को; प्रतियन्तु—स्वीकार करें; विप्राः—हे ब्राह्मणों; गङ्गा—गंगा माता; च—भी; देवी—भगवान् की प्रत्यक्ष प्रतिनिधि; धृत—धारण किया; चित्तम्—हृदय; ईशे—भगवान् में; द्विज-उपसृष्टः—ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न; कुहकः—चमत्कार; तक्षकः—तक्षक नाग; वा—या; दशतु—काटे; अलम्—अविलम्ब; गायत—कृपया गाते रहें; विष्णु-गाथाः—विष्णु के कार्यों की कथा।

हे ब्राह्मणों, आप मुझे पूर्ण रूप से शरणागत के रूप में स्वीकार करें और भगवान् की प्रतिनिधि-स्वरूपा माँ गंगा भी मुझे इसी रूप में स्वीकार करें, क्योंकि मैं पहले से अपने हृदय में भगवान् के चरणकमलों को धारण किये हूँ। अब चाहे तक्षक नाग, या ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न कोई भी चमत्कारी वस्तु, मुझे तुरन्त डस ले। मेरी एकमात्र इच्छा यह है कि आप सब भगवान् विष्णु की लीलाओं का गायन करते रहें।

**तात्पर्य :** ज्योंही कोई परमेश्वर के चरणकमलों में पूर्ण रूप से समर्पित हो जाता है, तो वह मृत्यु से तनिक भी भयभीत नहीं होता। गंगा नदी के तट पर भगवद्भक्तों की उपस्थिति से तथा महाराज परीक्षित द्वारा भगवान् के चरणकमलों में पूर्ण शरणागति से उत्पन्न वातावरण इस बात की गारंटी थी कि राजा भगवद्धाम वापस जा रहे हैं। इस तरह वे मृत्यु के भय से सर्वथा मुक्त हो गये।

पुनश्च भूयाद्भगवत्यनन्ते  
 रतिः प्रसङ्गश्च तदाश्रयेषु ।  
 महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं  
 मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ॥ १६ ॥

### शब्दार्थ

पुनः—फिर; च—तथा; भूयात्—ऐसा हो; भगवति—भगवान् श्रीकृष्ण में; अनन्ते—अनन्त शक्तिमान; रतिः—आकर्षण;  
 प्रसङ्गः—संगति; च—भी; तत्—उसका; आश्रयेषु—उनके भक्तों से; महत्सु—भौतिक सृष्टि में; याम् याम्—जो जो;  
 उपयामि—मैं ले सकता हूँ; सृष्टिम्—जन्म; मैत्री—मित्रता; अस्तु—हो; सर्वत्र—सभी जगह; नमः—मेरा नमस्कार है;  
 द्विजेभ्यः—ब्राह्मणों को।

मैं आप समस्त ब्राह्मणों को पुनः नमस्कार करके यही प्रार्थना करता हूँ कि यदि मैं इस भौतिक जगत में फिर से जन्म लूँ, तो अनन्त भगवान् कृष्ण के प्रति मेरी पूर्ण आसक्ति हो, उनके भक्तों की संगति प्राप्त हो और समस्त जीवों के साथ मैत्री-भाव रहे।

तात्पर्य : महाराज परीक्षित ने यहाँ पर यह बताया है कि भगवद्भक्त ही एकमात्र परिपूर्ण जीव होता है। भगवद्भक्त किसी का शत्रु नहीं होता, भले ही उसके अनेक शत्रु हों। भगवद्भक्त अभक्तों की संगति में नहीं रहना चाहता, यद्यपि उनसे उसकी शत्रुता नहीं होती। वह भगवद्भक्तों की ही संगति चाहता है। यह सर्वथा स्वाभाविक है, क्योंकि समान विचारकों में ही मैत्री सम्भव है। और भक्त का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है, समस्त जीवों के पिता भगवान् श्रीकृष्ण में पूर्ण अनुरक्ति। जिस प्रकार एक पिता का अच्छा बेटा अपने समस्त भाइयों से मित्रवत् आचरण करता है, उसी तरह भगवद्भक्त, परम पिता भगवान् श्रीकृष्ण का अच्छा बेटा होने के कारण, अन्य समस्त जीवों को अपने परम पिता से सम्बन्धित देखता है। वह अपने पिता के उद्दंड पुत्रों को सभ्य बनाकर उनसे ईश्वर के परम पितृत्व को स्वीकार कराने का प्रयास करता है। महाराज परीक्षित निश्चित रूप से भगवद्धाम वापस जा रहे थे, किन्तु यदि उन्हें न भी जाना होता, तो भी उन्होंने जिस तरह के जीवन के लिए प्रार्थना की, वह भौतिक जगत के लिए परम पूर्ण विधि है। शुद्ध भक्त कभी ब्रह्मा जैसे महापुरुषों का साथ भी नहीं चाहता है, उसे तो क्षुद्र जीव की भी संगति पसन्द है, बशर्ते कि वह भगवद्भक्त हो।

इति स्म राजाध्यवसाययुक्तः

प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः ।  
 उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते  
 समुद्रपत्न्याः स्वसुतन्यस्तभारः ॥ १७ ॥

### शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; स्म—भूतकाल के लिए प्रयुक्त; राजा—राजा; अध्यवसाय—धीरज; युक्तः—लगे हुए; प्राचीन—पूर्वी;  
 मूलेषु—जड़ के समेत; कुशेषु—कुश घास से बने आसन पर; धीरः—आत्म-संयमी; उदङ्-मुखः—उत्तराभिमुख; दक्षिण—  
 दक्षिणी; कूले—किनारे पर; आस्ते—स्थित; समुद्र—समुद्र की; पत्न्याः—पत्नी ( गंगा ); स्व—अपना; सुत—पुत्र; न्यस्त—  
 त्यागा हुआ; भारः—प्रशासन का भार।

पूर्ण आत्म-संयम से, महाराज परीक्षित पूर्वाभिमुख जड़ोंवाले कुशों के बने हुए, गंगा के दक्षिणी तट पर रखे, आसन पर बैठ गये और उन्होंने अपना मुख उत्तर की ओर कर लिया। इसके पूर्व उन्होंने अपने साम्राज्य का सारा भार अपने पुत्र को सौंप दिया था।

तात्पर्य : गंगा नदी समुद्र पत्नी के रूप में विख्यात है। कुश का बना आसन पवित्र माना जाता है, यदि उसे जड़ समेत भूमि से उखाड़ा गया हो और यदि उसकी जड़ें पूर्व की ओर हों तो उसे शुभ माना जाता है। आध्यात्मिक सफलता के लिए उत्तराभिमुख होना और भी अनुकूल होता है। महाराज परीक्षित ने घर छोड़ने के पूर्व प्रशासन का भार अपने पुत्र को सौंप दिया था। इस तरह समस्त परिस्थितियाँ उनके अनुकूल थीं।

एवं च तस्मिन्नरदेवदेवे  
 प्रायोपविष्टे दिवि देवसङ्घाः ।  
 प्रशस्य भूमौ व्यकिरन् प्रसूनै-  
 मुदा मुहुर्दुन्दुभयश्च नेदुः ॥ १८ ॥

### शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; च—तथा; तस्मिन्—उसमें; नर-देव-देवे—राजा में; प्राय-उपविष्टे—आमरण उपवास में लगा; दिवि—  
 आकाश में; देव—देवता; सङ्घाः—सबके सब; प्रशस्य—कार्य की प्रशंसा करके; भूमौ—पृथ्वी पर; व्यकिरन्—बरसाया;  
 प्रसूनैः—फूलों से; मुदा—प्रसन्न होकर; मुहुः—निरन्तर; दुन्दुभयः—दैवी ढोल; च—भी; नेदुः—बजाये गये।

इस प्रकार महाराज परीक्षित आमरण उपवास करने के लिए बैठ गये। स्वर्गलोक के सारे देवता राजा के इस कार्य की प्रशंसा करने लगे और हर्ष-विभोर होकर पृथ्वी पर निरन्तर पुष्प-वर्षा करने लगे तथा दैवी नगाड़े बजाने लगे।

**तात्पर्य :** महाराज परीक्षित के काल तक भी अन्तर्ग्रहीय यातायात था और महाराज परीक्षित के मोक्ष-प्राप्ति हेतु किए जाने वाले आमरण उपवास की खबर आकाश में उच्च लोकों तक फैल गई, जहाँ बुद्धिमान देवता रहते हैं। देवतागण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक समृद्धशाली होते हैं, लेकिन वे सभी परमेश्वर की आज्ञाओं के पालक हैं। स्वर्गलोक में एक भी नास्तिक नहीं है। इस तरह पृथ्वी के किसी भगवद्भक्त की वे प्रशंसा करते हैं और महाराज परीक्षित से तो वे अत्यधिक हर्षित थे, अतएव उन्होंने पुष्पों की वृष्टि करके तथा दैवी नगाड़े बजाकर उनका सम्मान किया। कोई भी देवता किसी भक्त को भगवद्भक्त जाते देखकर हर्षित होता है। वह भगवद्भक्त से सदा प्रसन्न रहता है, यहाँ तक कि वह अपनी आधिदैविक शक्ति से भक्तों की सभी प्रकार से सहायता करता है और उनके कार्यों से भगवान् प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार भगवान्, देवता तथा पृथ्वी पर स्थित भगवद्भक्त के बीच पूर्ण सहयोग की अदृश्य शृंखला बनी हुई है।

महर्षयो वै समुपागता ये  
 प्रशस्य साध्वित्यनुमोदमानाः ।  
 ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा  
 यदुत्तमश्लोकगुणाभिरूपम् ॥ १९ ॥

### शब्दार्थ

महर्षयः—महर्षिगण; वै—सचमुच; समुपागताः—वहाँ एकत्रित; ये—जो; प्रशस्य—प्रशंसा करके; साधु—बहुत अच्छा; इति—इस प्रकार; अनुमोदमानाः—अनुमोदित करते हुए; ऊचुः—कहा; प्रजा-अनुग्रह—जीवों का कल्याण करने; शील-साराः—गुणात्मक रूप से शक्तिमान; यत्—क्योंकि; उत्तम-श्लोक—चुने हुए श्लोकों से प्रशंसित; गुण-अभिरूपम्—दैवी गुणों के समान सुन्दर।

वहाँ पर एकत्र हुए सारे ऋषियों ने भी महाराज परीक्षित के निर्णय को सराहा और “बहुत अच्छा ( साधु-साधु )” कहकर उन्होंने अपना अनुमोदन व्यक्त किया। स्वभावतः मुनिगण सामान्य लोगों का कल्याण करने के लिए उन्मुख रहते हैं, क्योंकि उनमें परमेश्वर के सारे गुण पाये जाते हैं। अतएव वे भगवान् के भक्त महाराज परीक्षित को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले।

**तात्पर्य :** भक्ति मय सेवा का पद प्राप्त करने पर जीव का प्राकृतिक सौन्दर्य बढ़ जाता है। महाराज परीक्षित भगवान् कृष्ण की आसक्ति में लीन थे। यह देखकर वहाँ पर एकत्र सारे ऋषि अत्यन्त प्रसन्न

थे। उन्होंने 'साधु-साधु' कहकर अपनी ओर से अनुमोदन किया। ऐसे ऋषि सामान्य लोगों का कल्याण चाहते रहते हैं और जब वे महाराज परीक्षित जैसे महानुभाव को भक्ति-पथ पर अग्रसर होते देखते हैं, तो उनके हर्ष की सीमा नहीं रहती और वे अपनी शक्ति में जो हैं, वे सब आशीर्वाद देते हैं। भगवद्भक्ति इतनी शुभ है कि सारे देवता तथा ऋषि, यहाँ तक कि स्वयं भगवान् भी भक्त से प्रसन्न हो जाते हैं, इसीलिए भक्त को प्रत्येक वस्तु शुभ दिखती है। प्रगतिशील भक्त के मार्ग से सारी अशुभ बातें हटा ली जाती हैं। मृत्यु के समय महर्षियों से भेंट निश्चय ही महाराज परीक्षित के लिए शुभ थी और इस तरह वे ब्राह्मण बालक के तथाकथित शाप से धन्य हो गये।

न वा इदं राजर्षिवर्यं चित्रं  
भवत्सु कृष्णं समनुव्रतेषु ।  
येऽध्यासनं राजकिरीटजुष्टं  
सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ॥ २० ॥

### शब्दार्थ

न—न तो; वा—इस प्रकार; इदम्—यह; राजर्षि—राजाओं के ऋषि; वर्य—प्रधान; चित्रम्—आश्चर्यजनक; भवत्सु—आप सबों को; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण; समनुव्रतेषु—उस पथ पर दृढ़ रहनेवालों को; ये—जो; अध्यासनम्—सिंहासनारूढ़; राजकिरीट—राजमुकुट; जुष्टम्—अलंकृत; सद्यः—शीघ्र; जहुः—त्याग दिया; भगवत्—भगवान्; पार्श्व—कामाः—संगति प्राप्त करने का इच्छुक।

( मुनियों ने कहा : ) हे भगवान् श्रीकृष्ण की परम्परा का पालन करनेवाले पाण्डुवंशी राजर्षियों के प्रमुख! यह तनिक भी आश्चर्यप्रद नहीं कि आप अपना वह सिंहासन, जो अनेक राजाओं के मुकुटों से सुसज्जित है, भगवान् का नित्य सान्निध्य प्राप्त करने के लिए त्याग रहे हैं।

तात्पर्य : मूर्ख राजनीतिज्ञ जो प्रशासनिक पदों पर डटे हुए होते हैं, सोचते हैं कि वे जिन अस्थायी पदों पर हैं, वे जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि हैं। अतएव वे उन पदों पर जीवन के अन्तिम क्षणों तक चिपके रहते हैं, उन्हें इसका ध्यान कहाँ कि मुक्ति प्राप्त करके भगवद्धाम में भगवान् के पार्श्वों में से एक पद प्राप्त करना जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य है। मनुष्य जन्म इसी के लिए मिला है। भगवान् ने भगवद्गीता में हमें कई बार आश्वस्त किया है कि सनातन भगवद्धाम वापस जाना सर्वोच्च उपलब्धि है। प्रह्लाद महाराज ने भगवान् नृसिंह से प्रार्थना करते हुए कहा, “हे प्रभु! मैं जीवन की भौतिकतावादी शैली से अत्यधिक भयभीत हूँ। मैं आपके इस भयावने नृसिंहदेव रूप से तनिक भी भयभीत नहीं हूँ।

यह भौतिकतावादी जीवन शैली चक्री के पाट के समान है, जिसके द्वारा हम कुचले जा रहे हैं। हम जीवन की उत्ताल तरंगों के भयावह भँवर में गिर गये हैं। अतएव हे भगवान्! मैं आपके चरणकमलों में प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे सेवक के रूप में अपने नित्य धाम में वापस बुला लें। यही इस भौतिकतावादी जीवनशैली की सर्वोच्च मुक्ति है। मुझे इस भौतिकतावादी जीवन का अत्यन्त कटु अनुभव है। मैंने अपने कर्मों के वशीभूत होकर जिस-जिस योनि में जन्म लिया है, मुझे दो बातों का पीड़ादायक अनुभव हुआ है—अपने प्रिय से विछोह तथा अवांछित से भेंट। इनके प्रतिकार के लिए मैंने जो उपचार अपनाये, वे खुद रोग से अधिक भयावह निकले। अतः मैं जन्म-जन्मांतर एक स्थान से दूसरे स्थान में फिरता रहा, और मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे अपने चरणकमलों में शरण दें।”

पाण्डव राजा, जो संसार के अनेक सन्तों से बढ़कर हैं, जीवन की भौतिकतावादी शैली के कटु परिणामों से अवगत थे। वे कभी उस राजसिंहासन की चकाचौंध से मोहित न थे, जिस पर वे बैठे। वे सदैव भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने के हेतु, उनके द्वारा पुकारे जाने के लिए उत्सुक रहते थे। महाराज परीक्षित महाराज युधिष्ठिर के सुयोग्य पौत्र थे। महाराज युधिष्ठिर ने अपने पौत्र के लिए सिंहासन छोड़ दिया और इसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर के पौत्र महाराज परीक्षित ने अपने पुत्र जनमेजय के लिए सिंहासन छोड़ दिया। इस वंश में सारे राजाओं का ऐसा ही रिवाज था, क्योंकि वे सभी कृष्ण की परम्परा का पालन करनेवाले थे। इस तरह भगवद्भक्त कभी भी भौतिकतावादी जीवन की चकाचौंध से मोहित नहीं होते और वे निष्पक्ष भाव से झूठे भ्रामक भौतिकतावादी जीवन के विषयों से अनासक्त रहते हैं।

सर्वे वयं तावदिहास्महेऽथ  
 कलेवरं यावदसौ विहाय ।  
 लोकं परं विरजस्कं विशोकं  
 यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥ २१ ॥

## शब्दार्थ

सर्वे—सभी; वयम्—हमारा; तावत्—तब तक; इह—इस स्थान पर; आस्महे—रुकेंगे; अथ—तत्पश्चात्; कलेवरम्—शरीर; यावत्—जब तक; असौ—राजा; विहाय—त्यागकर; लोकम्—लोक को; परम्—परम; विरजस्कम्—संसारी कल्मष से सर्वथा मुक्त; विशोकम्—सभी प्रकार के शोक से पूर्ण रूप से मुक्त; यास्यति—लौटता है; अयम्—यह; भागवत—भक्त; प्रधानः—प्रमुख।

हम सभी यहाँ पर तब तक प्रतीक्षा करेंगे, जब तक भगवान् के प्रमुख भक्त महाराज परीक्षित परम लोक को लौट नहीं जाते, जो समस्त संसारी कल्मष तथा समस्त प्रकार के शोक से पूर्ण रूप से मुक्त है।

तात्पर्य : भौतिक सृष्टि, जिसकी तुलना आकाश के बादल से की गई है, उसकी सीमा से परे परव्योम अर्थात् आध्यात्मिक आकाश है, जो वैकुण्ठ नामक ग्रहों से भरा हुआ है। ऐसे वैकुण्ठ ग्रह भी भिन्न-भिन्न नामों से जाने जाते हैं यथा पुरुषोत्तमलोक, अच्युतलोक, त्रिविक्रमलोक, हृषीकेशलोक, केशवलोक, अनिरुद्धलोक, माधवलोक, प्रद्युम्नलोक, संकर्षणलोक, श्रीधरलोक, वासुदेवलोक, अयोध्यालोक, द्वारकालोक तथा अन्य अनेकानेक लाखों आध्यात्मिक लोक जहाँ भगवान् अधिष्ठाता हैं। वहाँ के सारे जीव मुक्त आत्मा हैं और उनके शरीर भगवान् के ही समान आध्यात्मिक हैं। वहाँ भौतिक कल्मष नहीं है, हर वस्तु आध्यात्मिक है। अतएव वहाँ कुछ भी शोक करने योग्य नहीं है। ये लोक दिव्य आनन्द से पूर्ण हैं। वहाँ न जन्म है, न जरा, न मृत्यु और न रोग है। उपर्युक्त समस्त वैकुण्ठलोकों में एक परम लोक है, जो गोलोक वृन्दावन कहलाता है, जो भगवान् श्रीकृष्ण तथा विशिष्ट पार्षदों का धाम है। महाराज परीक्षित के लिए यह विशिष्ट धाम पूर्वनिश्चित था और वहाँ पर एकत्र हुए सारे ऋषि इसे पहले से देख सकते थे। वे सभी महान् राजा के महाप्रस्थान के विषय में परस्पर बातें कर रहे थे और वे उन्हें अन्तिम क्षण तक देखना चाह रहे थे, क्योंकि उन्हें फिर ऐसा महान् भगवद्भक्त देखने को नहीं मिलेगा। जब भगवान् का कोई बड़ा भक्त दिवंगत होता है, तो इसमें शोक करने के लिए कुछ नहीं होता, क्योंकि भक्त का भगवद्धाम में प्रवेश पूर्वनिश्चित है। लेकिन दुख की बात तो यह है कि ऐसा महान् भक्त हमारी दृष्टि से ओझल हो जाता है। अतएव दुखी होने की बात तो है ही। जिस तरह भगवान् विरले ही हमारी इन आँखों से दिखते हैं, उसी तरह महान् भक्त भी। अतः महर्षियों ने ठीक ही अपने-अपने स्थानों पर अन्तिम क्षण तक रहने का निश्चय किया।



आश्रुत्य तदृषिगणवचः परीक्षित्  
समं मधुच्युद् गुरु चाव्यलीकम् ।  
आभाषतैनानभिनन्द्य युक्तान्  
शुश्रूषमाणश्चरितानि विष्णोः ॥ २२ ॥

### शब्दार्थ

आश्रुत्य—सुनकर; तत्—वह; ऋषि-गण—एकत्रित मुनि; वचः—बोलते हुए; परीक्षित्—महाराज परीक्षित; समम्—निष्पक्ष;  
मधु-च्युत्—सुनने में मधुर; गुरु—गम्भीर; च—भी; अव्यलीकम्—सर्वथा सत्य; आभाषत—कहा; एनान्—वे सब;  
अभिनन्द्य—स्वागत किया; युक्तान्—ढंग से प्रस्तुत; शुश्रूषमाणः—सुनने के लिए उत्सुक; चरितानि—कार्यकलापों को;  
विष्णोः—भगवान् के।

महान् ऋषियों ने जो कुछ कहा, वह सुनने में अति सुमधुर, सार्थक तथा यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया गया पूर्ण सत्य था। अतएव उन्हें सुनने के बाद महाराज परीक्षित ने भगवान् श्रीकृष्ण के कार्यकलापों के विषय में सुनने की इच्छा से महर्षियों को अभिनन्दन दिया।

समागताः सर्वत एव सर्वे  
वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे ।  
नेहाथ नामुत्र च कश्चनार्थ  
ऋते परानुग्रहमात्मशीलम् ॥ २३ ॥

### शब्दार्थ

समागताः—एकत्रित; सर्वतः—सभी दिशाओं से; एव—निश्चय ही; सर्वे—आप सब; वेदाः—परम ज्ञान; यथा—जैसे; मूर्ति-  
धराः—मूर्तिमंत; त्रि-पृष्ठे—ब्रह्मा के लोक में ( जो उर्ध्व, मध्य तथा अधो तीनों लोकों के ऊपर स्थित है ); न—नहीं; इह—इस  
संसार में; अथ—तत्पश्चात्; न—न तो; अमुत्र—अन्य जगत में; च—भी; कश्चन—अन्य कोई; अर्थः—हित, स्वार्थ; ऋते—के  
अतिरिक्त; पर—अन्य; अनुग्रहम्—कृपा; आत्म-शीलम्—अपना स्वभाव।

राजा ने कहा : हे महर्षियों, आप ब्रह्माण्ड के कोने-कोने से आकर यहाँ पर कृपापूर्वक एकत्र हुए हैं। आप सभी परम ज्ञान के मूर्तिमंत स्वरूप हैं, जो तीनों लोकों के ऊपर के लोक ( सत्यलोक ) का वासी है। फलस्वरूप आपकी स्वाभाविक प्रवृत्ति अन्यो का कल्याण करने की है और इसके अतिरिक्त इस जीवन में या अगले जीवन में आपकी अन्य कोई रूचि नहीं है।

तात्पर्य : छह प्रकार के ऐश्वर्य हैं—सम्पत्ति, बल, यश, सौन्दर्य, ज्ञान तथा वैराग्य। ये सब मूलतः भगवान् के गुण हैं। परम पुरुष के अंश रूप जीवों में ये सारे गुण आंशिक रूप से, अधिक से अधिक अठहत्तर प्रतिशत पाये जाते हैं। भौतिक जगत में ये गुण ( भगवान् के गुणों के १८% तक) भौतिक

शक्ति द्वारा उसी प्रकार ढके रहते हैं, जिस प्रकार सूर्य बादल से ढका रहता है। मेघों से आच्छन्न सूर्य की शक्ति मूल तेज की तुलना में मन्द रहती है। इसी प्रकार ऐसे गुणों से युक्त जीवों का मूल रंग प्रायः लुप्त रहता है। ब्रह्माण्ड में लोकों के तीन वर्ग हैं, जिनके नाम हैं—अधोलोक, मध्यलोक तथा ऊर्ध्वलोक। पृथ्वी के मनुष्य मध्यलोकों के प्रारम्भ में रहते हैं, लेकिन ब्रह्मा जैसे जीव तथा उनके समकालीन जीव ऊर्ध्वलोकों में रहते हैं, जिनमें से सत्यलोक सबसे ऊपर है। सत्यलोक के सारे निवासी वैदिक विद्या में पूर्ण रूप से निष्णात् होते हैं और इस तरह मायारूपी बादल साफ हो जाते हैं। फलस्वरूप वे साक्षात् वेद कहलाते हैं। ऐसे पुरुष संसारी तथा दिव्य दोनों प्रकार के ज्ञान से पूर्ण अवगत होने से संसारी या दिव्य लोकों में कोई रुचि नहीं रखते। वे एक तरह से इच्छारहित भक्त हैं। संसारी जगत में उन्हें कुछ भी प्राप्त करना नहीं रहता और दिव्य जगत में वे स्वयं में पूर्ण रहते हैं। तो फिर वे संसारी जगत में क्यों आते हैं? वे भगवान् के आदेश से विभिन्न लोकों में पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए मसीहा (उद्धारकर्ता) के रूप में आते हैं। वे पृथ्वीलोक में आते हैं और विभिन्न परिस्थितियों में लोगों का कल्याण करते हैं। उन्हें इस संसार में भौतिक शक्ति द्वारा प्रवंचित सड़ रहे पतित आत्माओं का उद्धार करने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं होता।

ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे  
विश्रभ्य विप्रा इति कृत्यतायाम् ।  
सर्वात्मना प्रियमाणैश्च कृत्यं  
शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः ॥ २४ ॥

### शब्दार्थ

ततः—इस तरह; च—तथा; वः—आपको; पृच्छ्यम्—पूछा जाने योग्य; इमम्—यह; विपृच्छे—पूछता हूँ; विश्रभ्य—विश्वसनीय; विप्राः—ब्राह्मणों; इति—इस प्रकार; कृत्यतायाम्—विभिन्न कर्तव्यों में से; सर्व-आत्मना—प्रत्येक के द्वारा; प्रियमाणैः—विशेषरूप से मरणासत्रों के द्वारा; च—तथा; कृत्यम्—आज्ञाकारी; शुद्धम्—एकदम सही; च—तथा; तत्र—वहाँ पर; आमृशत—पूर्ण विचार-विमर्श से; अभियुक्ताः—सर्वथा उपयुक्त।

हे विश्वासपात्र ब्राह्मणों, अब मैं अपने वर्तमान कर्तव्य के विषय में पूछ रहा हूँ। कृपया पूर्ण विचार-विमर्श के पश्चात्, मुझे सभी परिस्थितियों में हर एक के कर्तव्य के विषय में और विशेष रूप से जो तुरन्त मरनेवाला हो ( मरणासत्र ), उसके कर्तव्य के विषय में बतलाइये।

**तात्पर्य :** इस श्लोक में राजा ने विद्वान् मुनियों के समक्ष दो प्रश्न रखे हैं। पहला प्रश्न है कि सभी परिस्थितियों में हर एक का कर्तव्य क्या है? तथा दूसरा प्रश्न है कि मरणासन्न व्यक्ति का विशिष्ट कर्तव्य क्या है? इन दोनों में से मरणासन्न व्यक्ति विषयक प्रश्न सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि हर व्यक्ति मर रहा व्यक्ति है—चाहे वह तुरन्त मरे या सौ वर्ष बाद। आयु अवधि निरर्थक है, किन्तु मरनेवाले व्यक्ति का कर्तव्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। महाराज परीक्षित ने इन दोनों प्रश्नों को शुकदेव गोस्वामी के आने पर उनके समक्ष भी रखा। एक तरह से सम्पूर्ण *श्रीमद्भागवत*, द्वितीय स्कन्ध से लेकर बारहवें स्कन्ध तक, इन्हीं दोनों प्रश्नों से सम्बन्धित है। इनसे जो निष्कर्ष निकला है वह यह कि भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति मय सेवा ही जीवन में हर एक का स्थायी कर्तव्य है, जिसकी पुष्टि स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* के अन्तिम अंशों में की है। महाराज परीक्षित पहले से इस तथ्य से अवगत थे, लेकिन वे चाहते थे कि समागत महर्षिगण इस विषय में अपना निर्णय एक स्वर से दें, जिससे वे किसी मतभेद के बिना अपना कर्तव्य सुनिश्चित कर सकें। उन्होंने शुद्ध शब्द का विशेष उल्लेख किया है। दिव्य अनुभूति या आत्म-साक्षात्कार के लिए विभिन्न दार्शनिकों ने अनेक विधियाँ बताई हैं। इनमें से कुछ प्रथम कोटि की हैं, कुछ द्वितीय कोटि की और कुछ तृतीय कोटि की हैं। सर्वोत्तम विधि में अपेक्षा की गई है कि मनुष्य अन्य सारी विधियों को त्याग कर भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करे और इस तरह सम्पूर्ण पापों एवं उनके फलों से बच जाय।

तत्राभवद्भगवान् व्यासपुत्रो  
 यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः ।  
 अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो  
 वृतश्च बालैरवधूतवेषः ॥ २५ ॥

### शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; अभवत्—प्रकट हुए; भगवान्—शक्तिशाली; व्यास-पुत्रः—व्यासदेव के पुत्र; यदृच्छया—अपनी इच्छानुसार; गाम्—पृथ्वी में; अटमानः—निरन्तर विचरण करते; अनपेक्षः—उदासीन; अलक्ष्य—अव्यक्त; लिङ्गः—लक्षण; निज-लाभ—स्वरूपसिद्ध; तुष्टः—संतुष्ट; वृतः—घिरे हुए; च—तथा; बालैः—बालकों से; अवधूत—अन्यों द्वारा उपेक्षित; वेषः—वेशभूषा में।

उसी समय व्यासदेव के शक्तिसम्पन्न पुत्र वहाँ प्रकट हुए, जो सम्पूर्ण पृथ्वी पर उदासीन तथा आत्म-तुष्ट होकर विचरण करते रहते थे। उनमें किसी सामाजिक व्यवस्था या जीवन-स्तर

( वर्णाश्रम-धर्म ) का कोई लक्षण प्रकट नहीं होता था। वे स्त्रियों तथा बच्चों से घिरे थे और इस प्रकार का वेश धारण किये थे, मानों सभी लोगों ने उन्हें उपेक्षित ( अवधूत ) समझ रखा हो।

तात्पर्य : भगवान् शब्द कभी-कभी शुकदेव गोस्वामी जैसे परमेश्वर के महान् भक्तों के लिए प्रयुक्त होता है। ऐसे मुक्त जीव इस भौतिक जगत के कार्य-व्यापार में उदासीन रहते हैं, क्योंकि वे भक्तिमय सेवा की महान् उपलब्धियों से ही आत्म-तुष्ट रहते हैं। जैसाकि पहले बताया जा चुका है, शुकदेव गोस्वामी ने न तो कोई औपचारिक गुरु का स्वीकार किया, न ही कोई औपचारिक संस्कार सम्पन्न किये। उनके पिता व्यासदेव उनके नैसर्गिक गुरु थे, क्योंकि शुकदेव गोस्वामी ने श्रीमद्भागवत इन्हीं से सुना। इसके बाद वे पूर्ण रूप से आत्मतुष्ट बन गये। इस प्रकार वे किसी औपचारिक विधि पर निर्भर न थे। औपचारिक विधियाँ तो उनके लिए आवश्यक हैं, जो पूर्ण मोक्ष अवस्था को प्राप्त करना चाहते हैं, लेकिन श्रीशुकदेव गोस्वामी तो अपने पिता की कृपा से पहले से उस अवस्था में ही थे। तरुण बालक होने के नाते, उनसे समुचित वेश में रहने की आशा की जाती थी, लेकिन वे नग्न रहते और किसी सामाजिक परिपारी में रुचि न दिखाते। सामान्य जन उनकी उपेक्षा करते थे, किन्तु वे जिज्ञासु बालकों तथा स्त्रियों से ऐसे घिरे रहते जैसे की वे कोई पागल हों। इस प्रकार वे यहाँ पर तब प्रगट हुए, जब वे स्वेच्छा से पृथ्वी पर विचरण कर रहे थे। महाराज परीक्षित की जिज्ञासा से ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षिगण एकमत नहीं हो पा रहे थे कि क्या किया जाय। आध्यात्मिक मोक्ष के लिए विभिन्न व्यक्ति विभिन्न प्रकार की युक्तियाँ बताते हैं। किन्तु जीवन का चरम लक्ष्य भक्ति की चरम सिद्ध अवस्था प्राप्त करना है। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न डॉक्टर भिन्न-भिन्न नुस्खे लिखते हैं, उसी प्रकार मुनियों में भी मत-भिन्नता होती है। जब ये सारी बातें चल रही थीं, तभी व्यासदेव के शक्तिसम्पन्न ( तेजस्वी ) पुत्र वहाँ पर प्रकट हुए।

तं द्रव्यष्टवर्षं सुकुमारपाद-  
 करोरुबाह्वंसकपोलगात्रम् ।  
 चार्वायताक्षोत्रसतुल्यकर्ण-  
 सुभ्रवाननं कम्बुसुजातकण्ठम् ॥ २६ ॥

## शब्दार्थ

तम्—उसको; द्वि-अष्ट—सोलह; वर्षम्—वर्ष; सु-कुमार—कोमल; पाद—पाँव; कर—हाथ; ऊरु—जाँघें; बाहु—भुजाएँ; अंस—कंधे; कपोल—मस्तक; गात्रम्—शरीर; चारु—सुन्दर; आयत—चौड़ा; अक्ष—आँखें; उन्नस—ऊँची नाक; तुल्य—एक-से; कर्ण—कान; सुभ्रु—अच्छी भौंहें; आननम्—चेहरा, मुखमंडल; कम्बु—शंख; सुजात—अच्छी तरह बना; कण्ठम्—कण्ठ, गर्दन।

श्री व्यासदेव के इस पुत्र की आयु केवल सोलह वर्ष थी। उनके पाँव, हाथ, जाँघें, भुजाएँ, कंधे, ललाट तथा शरीर के अन्य भाग अत्यन्त सुकोमल तथा सुगठित बने थे। उनकी आँखें सुन्दर, बड़ी-बड़ी तथा नाक और कान उठे हुए थे। उनका मुखमण्डल अत्यन्त आकर्षक था और उनकी गर्दन सुगठित एवं शंख जैसी सुन्दर थी।

तात्पर्य : सम्मानित व्यक्ति का वर्णन पाँवों से शुरू किया जाता है और यह सम्मानित प्रणाली शुकदेव गोस्वामी पर भी लागू की गई है। वे केवल सोलह वर्ष के थे। व्यक्ति का सम्मान उसकी उपलब्धियों के लिए किया जाता है, न कि उसकी बड़ी आयु के लिए। व्यक्ति अनुभव के आधार पर अधिक सयाना हो सकता है, आयु से नहीं। श्री शुकदेव गोस्वामी, जिन्हें यहाँ पर व्यासदेव के पुत्र के रूप में बताया गया है, अपने ज्ञान के आधार पर वहाँ उपस्थित समस्त मुनियों से अधिक अनुभवी थे, यद्यपि अभी वे केवल सोलह वर्ष के थे।

निगूढजत्रुं पृथुतुङ्गवक्षस-  
मावर्तनाभिं वलिवल्गूदरं च ।  
दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं  
प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ॥ २७ ॥

## शब्दार्थ

निगूढ—आवृत; जत्रुम्—हँसली, कंधे की हड्डी; पृथु—चौड़ी; तुङ्ग—उठी हुई; वक्षसम्—छाती, सीना; आवर्त—भँवरदार, लहरदार; नाभिम्—नाभि; वलि-वल्गु—धारीदार; उदरम्—उदर, पेट; च—भी; दिक्-अम्बरम्—दिशाएँ ही जिसके वस्त्र हों (नग्न); वक्त्र—कुंचित, घुँघराले; विकीर्ण—छितरे, बिखरे; केशम्—बाल; प्रलम्ब—काफी लम्बे; बाहुम्—हाथ; सु-अमर-उत्तम—देवताओं में सर्वश्रेष्ठ (कृष्ण); आभम्—कान्ति।

उनकी हँसली मांसल थी, छाती चौड़ी तथा मोटी, नाभि गहरी तथा उदर सुन्दर धारियों से युक्त था। उनकी भुजाएँ लम्बी थीं तथा उनके घुँघराले बाल उनके सुन्दर मुखमंडल पर बिखरे हुए थे। वे नग्न थे और उनके शरीर की कान्ति भगवान् कृष्ण जैसी प्रतिबिम्बित हो रही थी।

तात्पर्य : उनकी शारीरिक संरचना उन्हें सामान्य व्यक्तियों से भिन्न बतानेवाली थी। शुकदेव गोस्वामी की शारीरिक संरचना के सम्बन्ध में जितने चिह्नों का वर्णन हुआ है, वे असामान्य लक्षण हैं और रूपाकृति विज्ञान के अनुसार महापुरुषों के लक्षण हैं। उनकी शारीरिक कान्ति भगवान् कृष्ण जैसी थी, जो देवों, देवताओं तथा समस्त जीवों में सर्वश्रेष्ठ हैं।

श्यामं सदापीव्यवयोऽङ्गलक्ष्म्या  
स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन ।  
प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्य-  
स्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ॥ २८ ॥

### शब्दार्थ

श्यामम्—श्यामल; सदा—सदैव; अपीव्य—अत्यधिक; वयः—आयु; अङ्ग—लक्षण; लक्ष्म्या—ऐश्वर्य से; स्त्रीणाम्—स्त्रियों का; मनः-ज्ञम्—आकर्षक; रुचिर—सुन्दर; स्मितेन—हँसी से; प्रत्युत्थिताः—खड़े हो गये; ते—वे सब; मुनयः—मुनिगण; स्व—अपने; आसनेभ्यः—आसनों से; तत्—वे; लक्षण-ज्ञाः—शरीरलक्षणों के जानने में पटु; अपि—भी; गूढ-वर्चसम्—छिपी हुई महिमा।

वे श्यामल वर्ण के तथा अपनी युवावस्था के कारण अत्यन्त सुन्दर थे। अपने शरीर की कान्ति तथा आकर्षक मुसकान के कारण, वे स्त्रियों के लिए मोहक थे। यद्यपि वे अपनी प्राकृतिक महिमा को छिपाने का प्रयत्न कर रहे थे, तो भी वहाँ पर उपस्थित सारे महर्षि रूपाकृति शास्त्र में पटु थे, अतएव सबों ने अपने-अपने आसन से उठकर उनका सम्मान किया।

स विष्णुरातोऽतिथय आगताय  
तस्मै सपर्या शिरसाजहार ।  
ततो निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका  
महासने सोपविवेश पूजितः ॥ २९ ॥

### शब्दार्थ

सः—वे; विष्णु-रातः—महाराज परीक्षित ( जिनकी रक्षा सदा भगवान् विष्णु करते हैं ); अतिथये—अतिथि बनने के लिए; आगताय—वहाँ आये हुए; तस्मै—उन्हें; सपर्याम्—सम्पूर्ण शरीर से; शिरसा—झुके सिर से; आजहार—प्रणाम किया; ततः—तत्पश्चात्; निवृत्ताः—रुक गये; हि—निश्चय ही; अबुधाः—अल्पज्ञ; स्त्रियः—स्त्रियाँ; अर्भकाः—लड़के; महा-आसने—श्रेष्ठ आसन पर; स—वे; उपविवेश—बैठ गये; पूजितः—पूजा किये गये।

महाराज परीक्षित जिन्हें विष्णुराज ( अर्थात् सदैव विष्णु द्वारा रक्षित ) के नाम से भी जाना जाता है, उन्होंने मुख्य अतिथि शुकदेव गोस्वामी का स्वागत करने के लिए अपना मस्तक झुकाया। उस समय सारी अल्पज्ञ स्त्रियाँ तथा बालकों ने श्री शुकदेव गोस्वामी का पीछा करना छोड़ दिया। सबों से सम्मान प्राप्त करके, शुकदेव गोस्वामी अपने श्रेष्ठ आसन पर विराजमान हुए।

तात्पर्य : उस सभा में शुकदेव गोस्वामी के आगमन पर श्रील व्यासदेव, नारद तथा कुछ अन्य ऋषियों के अतिरिक्त सभी लोग खड़े हो गये और महाराज परीक्षित ने इस महान् भगवद्भक्त के समक्ष साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। शुकदेव गोस्वामी ने भी सभी से, विशेषकर अपने पिता तथा नारदमुनि के समक्ष, गले मिलते हुए, हाथ मिलाकर, सिर हिलाकर तथा झुककर स्वागत का उत्तर दिया। तब उन्हें सभा का मुख्य आसन प्रदान किया गया। जब राजा तथा मुनि इस प्रकार से उनका स्वागत कर रहे थे, तो गलियों के छोकरे तथा अल्पज्ञ स्त्रियाँ जो उनके पीछे-पीछे चले आ रहे थे, आश्चर्य तथा भय से स्तम्मित रह गये। उन्होंने अपनी छिछोरी हरकतें बन्द कर दें और सब कुछ शान्त तथा गम्भीर हो गया।

स संवृतस्तत्र महान् महीयसां  
ब्रह्मर्षिराजर्षिदेवर्षिसङ्घैः ।  
व्यरोचतालं भगवान् यथेन्दु-  
ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः ॥ ३० ॥

### शब्दार्थ

सः—श्री शुकदेव गोस्वामी; संवृतः—घिरे हुए; तत्र—वहाँ; महान्—महान्; महीयसाम्—सबसे महान् से; ब्रह्मर्षि—ब्राह्मणों में ऋषि; राजर्षि—राजाओं में साधु; देवर्षि—देवताओं में साधु; सङ्घैः—के समूह द्वारा; व्यरोचत—भलीभाँति योग्य; अलम्—समर्थ; भगवान्—शक्तिमान; यथा—जिस तरह; इन्दुः—चन्द्रमा; ग्रह—लोक; ऋक्ष—स्वर्ग-लोक; तारा—तारे; निकरैः—समूह द्वारा; परीतः—घिरे हुए।

तब शुकदेव गोस्वामी साधु, मुनियों तथा देवताओं से इस तरह घिरे हुए थे जिस तरह चन्द्रमा तारों, नक्षत्रों तथा अन्य आकाशीय पिण्डों से घिरा रहता है। उनकी उपस्थिति अत्यन्त भव्य थी और वे सबों द्वारा सम्मानित हुए।

तात्पर्य : साधु पुरुषों की महासभा में ब्रह्मर्षि व्यासदेव, देवर्षि नारद और क्षत्रिय राजाओं के महान् शासक परशुराम इत्यादि थे। इनमें से कुछ भगवान् के शक्तिसम्पन्न अवतार थे। शुकदेव गोस्वामी न तो

ब्रह्मर्षि थे, न राजर्षि या देवर्षि, न ही वे नारद, व्यास या परशुराम के समान कोई अवतार थे। फिर भी उनका जो स्वागत किया गया, वह उनसे बढ़कर था। इसका अर्थ यह हुआ कि संसार में भगवान् की अपेक्षा भगवान् के भक्त का अधिक सम्मान होता है। अतएव शुकदेव गोस्वामी जैसे भक्त की महत्ता को कभी कम करके नहीं आँकना चाहिए।

प्रशान्तमासीनमकुण्ठमेधसं  
मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य ।  
प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलि-  
र्नत्वा गिरा सूनृतयान्वपृच्छत् ॥ ३१ ॥

### शब्दार्थ

प्रशान्तम्—पूर्ण रूप से शान्त; आसीनम्—बैठे हुए; अकुण्ठ—निःसंकोच भाव से; मेधसम्—पर्याप्त बुद्धि-सम्पन्न; मुनिम्—महर्षि को; नृपः—राजा ( महाराज परीक्षित ) ने; भागवतः—महान् भक्त; अभ्युपेत्य—निकट जाकर; प्रणम्य—प्रणाम करके; मूर्ध्ना—शिर से; अवहितः—ठीक से; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़कर; नत्वा—विनम्रतापूर्वक; गिरा—शब्दों से; सूनृतया—मीठी वाणी से; अन्वपृच्छत्—पूछा।

तब प्रखर मुनि श्री शुकदेव गोस्वामी पूर्ण शान्त भाव से बैठ गये। वे किसी भी प्रश्न का निःसंकोच होकर, बुद्धिमत्ता से उत्तर देने के लिए तैयार थे। तब महान् भक्त महाराज परीक्षित उनके पास पहुँचे और उन्होंने उनके समक्ष सिर झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर मधुर वाणी से विनीत होकर पूछा।

तात्पर्य : महाराज परीक्षित द्वारा गुरु से प्रश्न की जो मुद्रा अपनाई गई, वह शास्त्र के आदेशों के सर्वथा उपयुक्त है। शास्त्रीय आदेश यह है कि दिव्य विज्ञान समझने के लिए मनुष्य को चाहिए कि गुरु के पास विनीत होकर जाये। महाराज परीक्षित अब मृत्यु को प्राप्त होने के लिए उद्यत थे और सात दिनों की अल्प अवधि के पश्चात् वे भगवद्-धाम में प्रवेश करने की विधि जाननेवाले थे। ऐसे महत्त्वपूर्ण मामलों में मनुष्य को गुरु के पास पहुँचना पड़ता है। जब तक जीवन की समस्याओं का हल खोजने की आवश्यकता न हो, तब तक गुरु के पास जाने की आवश्यकता नहीं होती है। जिसे गुरु के समक्ष प्रश्न पूछने की समझ न हो, उसे गुरु के पास नहीं जाना चाहिए। गुरु की सारी योग्यताएँ शुकदेव गोस्वामी में पूर्ण रूप से प्रकट थीं। गुरु तथा शिष्य अर्थात् श्री शुकदेव एवं महाराज परीक्षित दोनों ने श्रीमद्भागवत के माध्यम से पूर्णता प्राप्त की। शुकदेव गोस्वामी ने अपने पिता व्यासदेव से



श्रीमद्भागवत सीखा, लेकिन उन्हें उसे सुनाने का अवसर नहीं मिला था। अतएव उन्होंने महाराज परीक्षित के समक्ष भागवत का पाठ किया और बिना हिचक के महाराज परीक्षित के प्रश्नों के उत्तर दिये। इस प्रकार गुरु तथा शिष्य दोनों को मुक्ति प्राप्त हुई।

परीक्षिदुवाच

अहो अद्य वयं ब्रह्मन् सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः ।

कृपयातिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ॥ ३२ ॥

**शब्दार्थ**

परीक्षित् उवाच—भाग्यशाली महाराज परीक्षित ने कहा; अहो—अहो; अद्य—आज; वयम्—हम; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; सत्-सेव्याः—भक्तों की सेवा करने योग्य; क्षत्र—शासक-वर्ग; बन्धवः—मित्र; कृपया—आपकी कृपा से; अतिथि-रूपेण—अतिथि के रूप में; भवद्भिः—आपके द्वारा; तीर्थकाः—तीर्थ-स्थल होने के योग्य; कृताः—किया गया।

भाग्यशाली राजा परीक्षित ने कहा : हे ब्राह्मण, आपने कृपा करके यहाँ पर मेरे अतिथि के रूप में उपस्थित होकर, हम सबों के लिए तीर्थस्थल बनाकर हमें पवित्र बना दिया है। आपकी कृपा से हम अयोग्य राजा भक्त की सेवा करने के सुपात्र बनते हैं।

तात्पर्य : शुकदेव गोस्वामी जैसे सन्त भक्त सामान्यतया किन्हीं भौतिक भोक्ताओं, विशेष रूप से राजाओं के पास नहीं आते। महाराज प्रतापरुद्र भगवान् चैतन्य के अनुयायी थे, किन्तु जब उन्होंने भगवान् का दर्शन करना चाहा, तो भगवान् ने उससे भेंट करने से इनकार कर दिया, क्योंकि वे राजा थे। जो भक्त भगवान् के धाम वापस जाना चाहते हैं, उनके लिए दो बातें वर्जित हैं—सांसारिक भोक्ता तथा स्त्रियाँ। अतएव शुकदेव गोस्वामी के स्तर के भक्त राजाओं से भेंट करने में कभी रुचि नहीं रखते। निस्सन्देह, महाराज परीक्षित की बात दूसरी थी। वे राजा होते हुए भी महान् भक्त थे, अतएव शुकदेव गोस्वामी उन्हें उनके जीवन के अन्तिम क्षणों में मिलने आये। महाराज परीक्षित, अपनी भक्तिमयी विनयशीलता के कारण, अपने को अपने महान् क्षत्रिय पूर्वजों का अयोग्य वंशज अनुभव कर रहे थे, यद्यपि वे अपने पूर्वगामियों के ही समान महान् थे। राजाओं की अयोग्य सन्तानें क्षत्र-बन्धव कहलाती हैं, जिस तरह ब्राह्मणों की अयोग्य सन्तानें द्विज-बन्धु या ब्रह्मबन्धु कहलाती हैं। महाराज परीक्षित शुकदेव गोस्वामी की उपस्थिति से अत्यन्त प्रोत्साहित थे। वे महान् सन्त की उपस्थिति से अपने को

पवित्र हुआ मान रहे थे, क्योंकि ऐसे सन्त की उपस्थिति किसी भी स्थान को तीर्थस्थल में बदल देती है।

येषां संस्मरणात्पुंसां सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः ।  
किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥ ३३ ॥

### शब्दार्थ

येषाम्—जिसके; संस्मरणात्—स्मृति से; पुंसाम्—पुरुष का; सद्यः—तुरन्त; शुद्ध्यन्ति—स्वच्छ हो जाते हैं; वै—निश्चय ही; गृहाः—सारे घर; किम्—क्या; पुनः—तब; दर्शन—भेंट; स्पर्श—छूना; पाद—पाँव; शौच—धोना; आसन-आदिभिः—आसन प्रदान करने आदि से।

आपके स्मरण मात्र से हमारे घर तुरन्त पवित्र हो जाते हैं। तो आपको देखने, स्पर्श करने, आपके पवित्र चरणों को धोने तथा अपने घर में आपको आसन प्रदान करने के विषय में तो कहना ही क्या?

तात्पर्य : पवित्र तीर्थ स्थानों का महत्त्व बड़े-बड़े मुनियों तथा सन्तों की उपस्थिति के कारण है। कहा जाता है कि पापी लोग पवित्र स्थानों में जाते हैं और अपने पापों को वहाँ छोड़ आते हैं जिससे वे वहाँ संचित हों। लेकिन बड़े-बड़े सन्तों की उपस्थिति से वह स्थान संचित पापों के संदूषण से मुक्त हो जाते हैं और इस तरह वहाँ पर उपस्थित भक्तों तथा सन्तों की कृपा से वे पवित्र स्थान पवित्र बने रहते हैं। यदि ऐसे सन्त सांसारिक लोगों के घरों में प्रकट हों, तो निश्चय ही सांसारिक भोक्ताओं के संचित पाप शमित होते जाते हैं। अतएव पवित्र सन्तों का गृहस्थों से कोई स्वार्थ नहीं रहता; उनका एकमात्र उद्देश्य गृहस्थों के घरों को पवित्र बनाना है। अतएव जब ऐसे सन्त-महात्मा द्वार पर आयें तो गृहस्थों को उनका कृतज्ञ होना चाहिए। जो गृहस्थ ऐसे पवित्र आदेशों का निरादर करता है, वह महान् अपराधी है। अतएव ऐसा आदेश है कि जो गृहस्थ सन्त को देखकर सिर नहीं झुकाता, उसे अपने महान् अपराध को निष्प्रभावित करने के लिए उस दिन उपवास करना चाहिए।

सान्निध्यात्ते महायोगिन्पातकानि महान्त्यपि ।  
सद्यो नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ॥ ३४ ॥

## शब्दार्थ

सान्निध्यात्—उपस्थिति के कारण; ते—आपकी; महा-योगिन्—हे महान् योगी; पातकानि—सारे पाप; महान्ति—अभेद्य; अपि—के बावजूद; सद्यः—तुरन्त; नश्यन्ति—नष्ट हो जाते हैं; वै—निश्चय ही; पुंसाम्—व्यक्ति; विष्णोः—भगवान् की उपस्थिति; इव—सदृश; सुर-इतराः—देवताओं के अतिरिक्त।

जिस प्रकार भगवान् की उपस्थिति में नास्तिक नहीं टिक सकता, उसी तरह हे सन्त, हे महान् योगी, मनुष्य के अभेद्य पाप भी आपकी उपस्थिति में तुरन्त नष्ट हो जाते हैं।

तात्पर्य : मनुष्यों की दो श्रेणियाँ हैं—नास्तिक तथा भगवद्भक्त। चूँकि भगवद्भक्त दैवी गुणों को प्रकट करता है, अतः वह देवता कहलाता है, जबकि नास्तिक असुर कहलाता है। भगवान् विष्णु की उपस्थिति में असुर (राक्षस) टिक नहीं सकता। असुरगण सदा ही भगवान् को नष्ट करने में जुटे रहते हैं, लेकिन तथ्य यह है कि भगवान् ज्योंही अपने नाम, रूप, गुण, लीला, साज-समान, या विविधता के माध्यम से प्रकट होते हैं, त्योंही असुर तत्काल नष्ट हो जाता है। कहा जाता है कि भगवान् के नाम का कीर्तन करते ही भूत भाग जाता है। बड़े-बड़े सन्त तथा भक्त भगवान् की साज-सामग्री की सूची में सम्मिलित होते हैं और इस प्रकार ज्योंही सन्त-रूपी भक्त उपस्थित होता है कि भूत-सदृश सारे पाप तुरन्त नष्ट हो जाते हैं। यह सारे वैदिक ग्रन्थों का निर्णय है। अतएव मनुष्य के लिए सन्त भक्तों की ही संगति करने की संस्तुति की जाती है, जिससे सांसारिक असुर तथा भूतप्रेत अपना दुष्प्रभाव न डाल सकें।

अपि मे भगवान् प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुतप्रियः ।

पैतृष्वसेयप्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्यात्तबान्धवः ॥ ३५ ॥

## शब्दार्थ

अपि—निश्चित रूप से; मे—मुझको; भगवान्—भगवान्; प्रीतः—प्रसन्न; कृष्णः—भगवान्; पाण्डु-सुत—राजा पाण्डु के पुत्र; प्रियः—प्रिय; पैतृ—पिता से सम्बन्धित; स्वसेय—बहन के बेटे; प्रीति—सन्तोष; अर्थम्—के सम्बन्ध में; तत्—उनका; गोत्रस्य—वंशज; आत्त—स्वीकृत; बान्धवः—मित्र के रूप में।

भगवान् कृष्ण जो राजा पाण्डु के पुत्रों को अत्यन्त प्रिय हैं, उन्होंने अपने महान् भाँजों तथा भाइयों को प्रसन्न करने के लिए मुझे भी सम्बन्धी की तरह स्वीकार किया है।

तात्पर्य : एक विशुद्ध अनन्य भगवद्भक्त अपने परिवार की सेवा, झूठे पारिवारिक मामलों में आसक्तों की अपेक्षा, अधिक अच्छे ढंग से करता है। सामान्यतया लोग पारिवारिक मामलों में आसक्त

रहते हैं और मानव समाज का सारा आर्थिक प्रेरक बल पारिवारिक मोह के वशीभूत होकर चलता है। ऐसे मोहग्रस्त लोगों को इतनी जानकारी नहीं रहती कि वे भगवद्भक्त बनकर परिवार की अधिक अच्छी सेवा कर सकते हैं। भगवान् अपने भक्त के पारिवारिक सदस्यों तथा वंशजों को विशेष सुरक्षा प्रदान करते हैं, भले ही ये सदस्य स्वयं अभक्त क्यों न हों! महाराज प्रह्लाद भगवान् के महान् भक्त थे, लेकिन उनका पिता हिरण्यकशिपु घोर नास्तिक तथा घोषित रूप से भगवान् का शत्रु था। किन्तु इतना सारा होते हुए भी, हिरण्यकशिपु को मोक्ष प्रदान किया गया, क्योंकि वह महाराज प्रह्लाद का पिता था। भगवान् इतने दयालु हैं कि वे अपने भक्त के परिवारजनों को सारी सुरक्षा प्रदान करते हैं, जिससे भक्त को अपने परिवार के विषय में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, यहाँ तक कि चाहे भक्ति करने के लिए वह ऐसे सदस्यों को छोड़ भी दे। महाराज युधिष्ठिर तथा उनके भाई कुन्ती के पुत्र थे और कुन्ती कृष्ण की बुआ थीं। महाराज परीक्षित महान् पाण्डवों के एकमात्र पौत्र होने के कारण, भगवान् कृष्ण का संरक्षण स्वीकार करते हैं।

अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम् ।

नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः ॥ ३६ ॥

### शब्दार्थ

अन्यथा—अन्यथा; ते—आपका; अव्यक्त-गतेः—अदृश्य गतिविधियों वाले का; दर्शनम्—मिलाप, भेंट; नः—हमारे लिए; कथम्—कैसे; नृणाम्—लोगों का; नितराम्—विशेष रूप से; म्रियमाणानाम्—मरणासन्नों का; संसिद्धस्य—परम पूर्ण का; वनीयसः—स्वेच्छा से प्राकट्य।

अन्यथा ( भगवान् कृष्ण की प्रेरणा के बिना ) यह कैसे सम्भव है कि आप स्वेच्छा से यहाँ प्रकट हुए, जबकि आप सामान्य लोगों से ओझल रहकर विचरण करते हैं और हम मरणासन्नों को दृष्टिगोचर नहीं होते।

तात्पर्य : निश्चित ही महर्षि शुकदेव गोस्वामी भगवान् कृष्ण द्वारा प्रेरित होकर महान् भगवद्भक्त महाराज परीक्षित के समक्ष स्वेच्छा से प्रकट हुए थे, जिससे उन्हें श्रीमद्भागवत की शिक्षा दे सकें। मनुष्य अपने गुरु तथा भगवान् की कृपा से ही भगवान् की भक्ति के सार को प्राप्त कर सकता है। गुरु भगवान् के व्यक्त प्रतिनिधि होते हैं, जो उसे अन्तिम सफलता प्राप्त करने में सहायता करते हैं। जिसे भगवान् अधिकार नहीं देते, वह गुरु नहीं बन सकता। श्रील शुकदेव गोस्वामी प्रधिकृत गुरु थे, अतएव

भगवान् ने उन्हें प्रेरणा दी कि वे महाराज परीक्षित के समक्ष प्रकट हों तथा उन्हें *श्रीमद्भागवत* की शिक्षाएँ दें। मनुष्य यदि भगवान् के भेजे गये प्रधिकृत प्रतिनिधि का कृपापात्र होता है, तो वह भगवद्धाम जाने की चरम सिद्धि प्राप्त कर सकता है। ज्योंही भगवद्भक्त की भेंट भगवान् के असली प्रतिनिधि से होती है, त्योंही वह इस शरीर को त्यागने के बाद भगवद्धाम जाने की गारंटी पा जाता है। किन्तु यह भक्त की खुद की निष्ठा पर निर्भर करता है। भगवान् सभी जीवों के हृदयों में विद्यमान हैं, अतएव वे हर व्यक्ति की गतिविधियों से अवगत रहते हैं। ज्योंही भगवान् देखते हैं कि कोई जीव भगवद्धाम जाने के लिए अत्यधिक उत्सुक है, तो भगवान् तुरन्त ही अपना प्रामाणिक प्रतिनिधि भेजते हैं। इस प्रकार निष्ठावान भक्त का भगवद्धाम जाना सुनिश्चित हो जाता है। निष्कर्ष यह है कि प्रामाणिक गुरु की सहायता प्राप्त करने का अर्थ है, *साक्षात् भगवान् से प्रत्यक्ष सहायता प्राप्त करना।*

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् ।

पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥ ३७ ॥

### शब्दार्थ

अतः—अतएव; पृच्छामि—पूछता हूँ; संसिद्धिम्—पूर्णता का मार्ग; योगिनाम्—सन्तों का; परमम्—परम; गुरुम्—गुरु; पुरुषस्य—पुरुष का; इह—इस जीवन में; यत्—जो भी; कार्यम्—कर्तव्य; म्रियमाणस्य—मरणासन्न का; सर्वथा—सब प्रकार से।

आप महान् सन्तों तथा भक्तों के गुरु हैं। अतएव मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप सारे व्यक्तियों के लिए और विशेष रूप से जो मरणासन्न हैं, उनके लिए पूर्णता का मार्ग दिखलाइये।

तात्पर्य : जब तक कोई पूर्णता के मार्ग के विषय में पूछने के लिए पूरी तरह उत्सुक न हो, तब तक गुरु के पास जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। गुरु, गृहस्थ के लिए अलंकरण स्वरूप नहीं होते। सामान्यतया फैशनपरस्त भौतिकतावादी बिना किसी लाभ के तथाकथित गुरु नियुक्त कर लेता है। ऐसा छद्म-रूप गुरु तथाकथित शिष्य की चापलूसी करता है और निःसन्देह इस तरह गुरु तथा शिष्य दोनों ही नरक को जाते हैं। महाराज परीक्षित अच्छे शिष्य थे, क्योंकि वे सबों के लिए और विशेष रूप से मरणासन्न के लिए लाभप्रद प्रश्न पूछते हैं। महाराज परीक्षित द्वारा पूछा गया प्रश्न *श्रीमद्भागवत* के सम्पूर्ण प्रतिपाद्य विषय का मूल सिद्धान्त है। अब हमें देखना है कि महान् गुरु कितनी बुद्धिमत्तापूर्वक इसका उत्तर देते हैं।

यच्छ्रोतव्यमथो जप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो ।  
स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ॥ ३८ ॥

### शब्दार्थ

यत्—जो भी; श्रोतव्यम्—सुनने योग्य; अथो—इससे; जप्यम्—उच्चरित; यत्—जो भी; कर्तव्यम्—किया गया; नृभिः—सामान्यजनों द्वारा; प्रभो—हे स्वामी; स्मर्तव्यम्—स्मरण करने योग्य; भजनीयम्—पूजा के योग्य; वा—अथवा; ब्रूहि—कृपया बताएँ; यद् वा—जो कुछ भी हो; विपर्ययम्—सिद्धान्त के विरुद्ध।

कृपया मुझे बतायें कि मनुष्य को क्या सुनना, जपना, स्मरण करना तथा पूजना चाहिए और यह भी बतायें कि उसे क्या-क्या नहीं करना चाहिए। कृपा करके मुझे यह सब बतलाइए।

नूनं भगवतो ब्रह्मन् गृहेषु गृहमेधिनाम् ।  
न लक्ष्यते ह्यवस्थानमपि गोदोहनं क्वचित् ॥ ३९ ॥

### शब्दार्थ

नूनम्—क्योंकि; भगवतः—आपका, जो शक्तिमान हैं; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; गृहेषु—घरों में; गृह-मेधिनाम्—गृहस्थों का; न—नहीं; लक्ष्यते—देखे जाते हैं; हि—निश्चित ही; अवस्थानम्—ठहराव; अपि—भी; गो-दोहनम्—गाय की दुहाई; क्वचित्—विरले ही।

हे शक्तिसम्पन्न ब्राह्मण, कहा जाता है कि आप लोगों के घर में मुश्किल से उतनी देर भी नहीं रुकते हैं, जितनी देर में गाय दुही जाती है।

तात्पर्य : संन्यास आश्रम में, सन्त तथा मुनि, गृहस्थ के घर प्रातःकाल गौवें दुहते समय जाते हैं और अपने उदर-पोषण के लिए कुछ दूध माँगते हैं। गाय का धारोष्ण एक सेर दूध एक प्रौढ़ व्यक्ति के शरीर-पोषण के लिए पर्याप्त होता है। यह सभी विटामिनों से युक्त होता है, अतएव सन्त तथा मुनि केवल दूध पीकर जीवित रहते हैं। गरीब से गरीब गृहस्थ भी, कम से कम दस गौवें रखता है और प्रत्येक गाय कम से कम १२ से २० क्वार्ट दूध देती है, अतएव कोई भी साधुओं के लिए कुछ सेर दूध देने में हिचक नहीं दिखाता। यह गृहस्थों का कर्तव्य है कि बच्चों की भाँति वे संतों तथा मुनियों का पालन करें। इस तरह शुकदेव गोस्वामी जैसे सन्त को किसी गृहस्थ के द्वार पर प्रातःकाल पाँच मिनट से अधिक नहीं रुकना होता। दूसरे शब्दों में, ऐसे सन्त गृहस्थों के घरों में विरले ही देखे जाते हैं, इसीलिए महाराज परीक्षित ने उनसे प्रार्थना की कि जितनी जल्दी हो सके वे उपदेश दें। गृहस्थों को भी इतना बुद्धिमान तो होना ही चाहिए कि वे द्वार पर आये हुए मुनि से कुछ दिव्य संदेश प्राप्त कर लें।

गृहस्थ को सन्त से यह नहीं कहना चाहिए कि वे उस चीज के विषय में उपदेश दें; जो बाजार में भी मिलता हो। सन्तों तथा गृहस्थों में पारस्परिक आदान-प्रदान का ऐसा सम्बन्ध होना चाहिए।

सूत उवाच

एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा ।

प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान् बादरायणिः ॥ ४० ॥

**शब्दार्थ**

सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; आभाषितः—बोले जाने पर; पृष्टः—तथा पूछे जाने पर; सः—वे; राज्ञा—राजा द्वारा; श्लक्ष्णया—मीठी; गिरा—भाषा से; प्रत्यभाषत—उत्तर देना प्रारम्भ किया; धर्म-ज्ञः—धर्म के सिद्धान्तों को जाननेवाले; भगवान्—शक्तिमान पुरुष; बादरायणिः—व्यासदेव के पुत्र ने।

श्री सूत गोस्वामी ने कहा : इस तरह मीठी भाषा का प्रयोग करते हुए राजा ने बातें कीं तथा प्रश्न किये। तब व्यासदेव के पुत्र जो महान् तथा शक्तिसम्पन्न पुरुष एवं धर्मवेत्ता थे, उन्होंने उत्तर देना प्रारम्भ किया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध के अन्तर्गत 'शुकदेव गोस्वामी का प्रकट होना' नामक उन्नीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।